पंखों की आवश्यकता है। जिस पंखी का एक पंख उखड़ जायगा वह अगर अनन्त और असीम आकाश में विचरण करने की इच्छा करेगा तो परिणाम एक ही होगा—अधःपतन। यही बात जीवन के संबंध में है। जीवन की उन्नति प्रवृत्ति और निवृत्ति–दोनों के बिना साध्य नहीं है। एकान्त निवृत्ति निरी अकर्मण्यता है और एकान्त प्रवृत्ति चित्त की चपलता है। इसीलिए ज्ञानी पुरुषों ने कहा है—

असुहादो विणिवित्ती सुहे पवित्ती य जाण चारित्त।

अर्थात्—अशुभ से निवृत्त होना और शुभ में प्रवृत्ति करना ही सम्यक् चारित्र समझना चाहिए।

'चारित्तं खलु धम्मो' अर्थात् सम्यक् चारित्र ही धर्म है; इस कथन को सामने रख कर विचार करने से स्पष्ट हो जाता है कि धर्म प्रवृत्ति और निवृत्ति रूप है। 'अहिंसा' निवृत्ति है पर उसकी साधना विश्वमैत्री और समभावना को जागृत करने रूप प्रवृत्ति से ही होती है। इसीसे अहिंसा व्यवहार्य बनती है। किन्तु हमें प्रायः जीवघात न करना सिखाया जाता है, पर जीवघात न करके उसके बदले करना क्या चाहिए, इस उपदेश की ओर उपेक्षा बताई जाती है।

आचार्य श्री जवाहरलालजी म० के व्याख्यानों में इन त्रुटियों की पूर्त्ति की गई है। उन्होंने धर्म को व्यवहार्य, सर्वाङ्गीण और प्रवर्त्तक रूप देने की सफल चेष्टा की है। अपने प्रभावशाली प्रवचनों द्वारा उन्होंने शास्त्रों का जो नवनीत जनता के समक्ष रक्खा है निस्सन्देह उसमें जीवनी शक्ति है। उनके विचारों की उदारता ऐसी ही है जैसे एक मार्मिक विद्वान जैनाचार्य की होनी चाहिए।

आचार्य श्री वाणी में [illegible] का [illegible], समाज में फैले हुए अनेक भ्रम एवं [illegible] विचारों का निराकरण [illegible] भी प्रमाण

प्रकाशक के दो शब्द

परम प्रतापी जैनाचार्य पूज्य श्री जवाहरलालजी महाराज के जनहितकर व्याख्यान प्रकाशित करने का सुयोग पाकर मेरी प्रसन्नता का पार नहीं है। सर्व साधारण जनता इससे लाभ उठावे, इसीमें मेरी कृतार्थता है।

राजनीतिक परिस्थितिके कारण कागज़ का मूल्य बेहद बढ़ गय है और इतने पर भी समय पर आवश्यक कागज नहीं मिलता। फि भी पुस्तक का मूल्य अधिक नहीं रक्खा गया है। पुस्तक-विक्रय। आय भी साहित्य प्रचार में ही खर्च की जायगी।

जब पुस्तक-प्रकाशन का निश्चय हुआ तब पूज्य श्री की जय शुक्ला चतुर्थी को बहुत दिन नहीं रह गये थे और उक्त पुस्तक प्रकाशित करनी थी। साहित्य-प्रेमी प० शान्तिलालजी के घोर परिश्रम से पुस्तक समय पर प्रकाशित हो सकी है। अतएव हम पंडितजी के आभारी हैं।

शीघ्रता के कारण प्रूफ सम्बन्धी त्रुटियों का रह जाना स्वाभावि है। आशा है पाठक इसके लिए क्षमा करेंगे।

—प्रकाशक

श्रीमान सेठ बहादुरमलजी बांठिया
भीनासर बीकानेर ।

श्रीमान् सेठ बहादुरमलजी सा. बांठिया

[संक्षिप्त परिचय]

स्थानकवासी सम्प्रदाय के पुराने नायकों का स्मरण करने पर भीनासर (बीकानेर) के श्रीमान सेठ बहादुरमलजी सा. बांठिया का नाम अवश्य याद किया जाता है। आपने विगत वर्षों में समाज की बहुमूल्य सेवाएँ की हैं। समाज की अनेक प्रसिद्ध संस्थाओं के साथ आपका घनिष्ठ संबंध रहा है।

सेठ बहादुरमलजी सा. एक आदर्श श्रीमान के समस्त गुणों से युक्त महानुभाव हैं। आपके हृदय की उदारता, सदाचारिता, सरलता और संयमशीलता अनुकरणीय है।

[illegible]
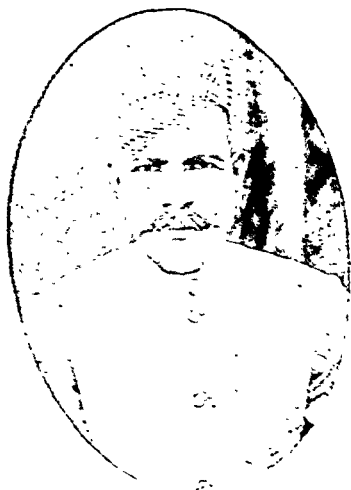
आपकी ओर से भीनासर में एक जैन औषधालय चलता बहुत वर्षों तक सेठजी अपने निजी खर्च से और निजी देखरेख उसका संचालन करते रहे। वि. सं. ६६ में आपने स्थायी रूप प्र करने के उद्देश्य से २५०००) रु दान कर औषधालय का फंड दिया है।

पींजरापोल के लिए आपने अपना एक मकान भेंट दिया है, पंचायत के लिए मकान और जमीन दी है, घोड़ा आदि पशुओं की दया से प्रेरित हो गंगाशहर से लेकर भीनासर तक पक्की सड़क बनवाने में आपका मुख्य हाथ है और उसके लिए आपने आधा खर्च भी किया है।

पूज्यश्री के प्रति आपकी अनुपम भक्ति है। पूज्यश्री को जब युवाचार्य पदवी देने का श्रीसंघ ने निश्चय किया, पर पूज्य श्री ने उसे स्वीकार न करते हुए सामान्य मुनि के रूप में ही रहने की इच्छा प्रदर्शित की थी तब स्वर्गीय सेठ वर्धमानजी पीतलिया के साथ आप पूज्यश्री की सेवा में उपस्थित हुए और आपने युवाचार्य पद की स्वीकृति प्राप्त की।

जलगाँव में जब पूज्य श्री का स्वास्थ्य बहुत अधिक खराब हो गया था तब आप अपने घर द्वार की चिन्ता छोड़कर पूज्यश्री की सेवा में उपस्थित रहे। उस समय की आप की भक्ति अत्यन्त सराह[illegible]

नीय है। संवत् १९८४, ८८, और ९९ में भी आपको पूज्यश्री की सेवा का महत्वपूर्ण लाभ प्राप्त हुआ है।

खेद है कि वि. सं. १९९६ में आप लकवा से ग्रस्त हो गये हैं और चलने-फिरने में असमर्थ हैं। फिर भी भक्ति के आधिक्य के कारण आप प्रतिदिन पूज्यश्री तथा संतों के दर्शन करने के लिए खास तौर पर बनवाई गई गाड़ी में किसी प्रकार जाते हैं, सामायिक करते हैं और व्याख्यान सुनते हैं। जब अनेक तन्दुरुस्त लोग धर्मक्रिया में प्रमादशील बने रहते हैं तब सेठ सा. की यह धर्मभक्ति देखकर हृदय से 'वाह-वाह!' निकल पड़ता है।

सेठ सा. की धर्मपत्नी का जब स्वर्गवास हुआ, तब आपकी उम्र सिर्फ ३१ वर्ष की थी। धन की बहुलता और यौवनस्थान होने पर भी आपने दूसरा विवाह नहीं किया और पूर्ण ब्रह्मचर्य पालन करने की आजन्म प्रतिज्ञा ले ली। जहाँ ६० वर्ष के बूढ़े काम-वासना के गुलाम बने रहते हैं वहाँ सेठ सा. का भर जवानी में पूर्ण ब्रह्मचर्य-पालन [illegible] आदर्श है और इससे [illegible] जीवन की [illegible]

में सहायता प्रदान की है। 'धर्म-व्याख्या' की दो हजार प्रतियाँ आप
बिना मूल्य वितीर्ण कराई और 'सत्यमूर्ति हरिश्चन्द्र', 'ब्रह्मचर्य प्र
'सुदर्शन चरित्र' और 'सुश्रयसिका सिद्धि' आदि पुस्तकों को अर्
मूल्य में विक्रय करने के लिए सहायता दी। प्रस्तुत पुस्तक 'दिव्य
सन्देश' भी आपकी ही सहायता से प्रकाशित की जा रही है। पू
श्री श्रीलालजी महाराज के जीवन-चरित के लिए आपने दो हज
रुपये की बिना माँगी सहायता दी और अपने साहित्यप्रेम
धर्मानुराग का परिचय दिया।

दीक्षाभिलाषी वैरागियों को आपकी ओर से शास्त्र आ
धर्मोपकरण भेंट किये जाते हैं। आपने अपने अध्ययन के लि
पुस्तकों का ग्रन्थालय के रूप में संग्रह किया है जिसमें छपे
ग्रन्थों के अतिरिक्त हस्तलिखित धर्म-ग्रन्थ भी हैं।

आज कल भी आप 'हितेच्छु श्रावक मंडल' रतलाम आ
अनेक संस्थाओं के प्रथमश्रेणी के सदस्य हैं। इस प्रकार आप
जीवन की संक्षिप्त रूपरेखा है।

आपका कुटुम्ब बीकानेर के प्रसिद्ध धनिकों में गिना जाता है
कलकत्ता और सन्मग्न (आसाम) में आपके फर्म चलते हैं औ
सिंधाणा (पंजाब) में आपकी विशाल जमींदारी है। कलकत्ते
इतवारी का आपका प्रसिद्ध कारखाना है। इस प्रकार धन का भराप

भंडार होने पर भी आपकी सादगी प्रशंसनीय है। आप अत्यन्त सरल, मिलनसार और भावुक हैं।

आपके सुपुत्र कुं० तोलारामजी तथा कुं० श्यामलालजी भी बड़े सेवाभावी, धर्मानुरागी और सरल हृदय हैं। आपसे समाज को बड़ी-बड़ी आशाएँ हैं।

शासनदेव से प्रार्थना है, सेठ बहादुरमलजी साहब बाँठिया स्वास्थ्य के साथ चिरजीवन प्राप्त करें और अनुकरणीय आदर्श समाज के समक्ष उपस्थित करते रहें।

शास्त्रों के मर्म का अध्ययन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि भगवान् के द्वारा की हुई वर्ण-व्यवस्था कर्त्तव्य की सुविधा के लिए थी। वह अहङ्कार का पोषण करने के लिये नहीं थी। अतएव, आज वर्णों के नाम पर जो उच्चता-नीचता की भावना फैली हुई है, वह वर्ण-व्यवस्था का स्वरूप नहीं है। यह वर्ण-व्यवस्था का विकार है। प्रत्येक व्यवस्था कुछ समय व्यतीत होने पर सर्व-साधारण के सम्पर्क से विकृत हो जाती है। यहाँ तक कि लोग उसका मूल-सिद्धान्त भुला देते हैं और उसके विविध विकारों को इतना अधिक महत्व दे देते हैं कि उसके मूल-सिद्धान्त की खोज निकालना भी मुश्किल हो जाता है। जब उस व्यवस्था का मूल-सिद्धान्त विकारों में दब जाता है तो अनेक लोग उसे हानिकारक और अनुपयोगी समझ कर, उससे घृणा करने लगते हैं। अगर इस प्रकार घृणा करने वाले लोग दोष के पात्र हैं, तो उनसे पहले दोषी वे हैं जो अमृत सरीखी हित-कारक शुद्ध व्यवस्था में विकार के विष का सम्मिश्रण करके उसे विषैली बना डालते हैं; तथापि विवेकशील विद्वानों का यह कर्त्तव्य है कि वे किसी व्यवस्था को समूल नष्ट करने का प्रयत्न करने से पहले उसके अन्तस्तत्त्व का अन्वेषण करें और उसे पहचान कर आये हुए विकारों को ही दूर करने की चेष्टा करें।

वर्ण-व्यवस्था सामाजिक और राष्ट्रीय अभ्युदय के लिये अत्यन्त आवश्यक और उपयोगी था और अब भी है; परन्तु वर्ण-व्यवस्था का वर्तमान विकृत रूप अवश्य [illegible] है। उदाहरण के [illegible] करने में ही अपना [illegible] अपनी [illegible] नियम [illegible] रहन

पड़िये। उसने भारत के शत्रुओं को अनेक बार पराजित किया था। पर संयुक्ता के प्रेमपाश में वह ऐसा फँसा कि बारह वर्ष तक अन्तःपुर से बाहर न निकला। उसका फल यह हुआ कि शत्रुओं का बल बढ़ गया और उसे कैद होना पड़ा। शत्रुओं ने पृथ्वीराज को कैद किया अर्थात् समस्त भारतवर्ष को कैद कर लिया। एक वीर क्षत्रिय स्वतन्त्रता खो कर गुलाम क्या बना, सारे भारत को उसने गुलाम बना दिया। जो क्षत्रिय अपने धर्म से च्युत होकर अपने देश को च्युत कर देता है वह अत्यन्त पातकी है।

क्षात्रधर्म का विषय बहुत विस्तृत है। इस पर भलीभांति प्रकाश डालने के लिए कई दिनों तक भाषण करने की आवश्यकता है। किन्तु आज मुझे ब्रह्मचर्य के सम्बन्ध में बोलने की सूचना दी गई है। अतएव इसी विषय पर कुछ प्रकाश डालूंगा। क्षत्रियों के तेजस्वी जीवन का ब्रह्मचर्य से घनिष्ठ सम्बन्ध भी है। अतएव क्षत्रियधर्म में ब्रह्मचर्य का भी समावेश होता है।

ब्रह्मचर्य शब्द कैसे बना और ब्रह्मचर्य क्या वस्तु है, सर्वप्रथम इस बात का विचार करना चाहिए। हमारे आर्यधर्म के साहित्य में ब्रह्मचर्य शब्द का उल्लेख मिलता है। जिन दिनों, अमरीका भी यह भी नहीं जानता था कि वस्त्र क्या होते हैं और अन्न क्या चीज़ नंग-धड़ंग रह कर, कच्चा मांस खाकर अपना पाशविक जीवन या कर रहा था, उन दिनों भारत बहुत ऊँची सभ्यता का धनी था। [illegible] ... आचार्यों ने [illegible]

और देशों में क्या होता है, यह प्रश्न यहाँ आवश्यक नहीं है। भारतवर्ष को अवश्य कारक ही पड़ रहा है। भारतवासियों ने वीर्य दुरुपयोग करके विविध प्रकार की व्याधियाँ विसाही हैं। कई मनुष्य वीर्य की यथोचित रक्षा न करने के कारण रोगों के शि हो रहे हैं। न जाने कितने हतवीर्य लोग आज भूख से तड़प रहे शोक से व्याकुल हैं। स्वतंत्रता की जगह गुलामी भोग रहे हैं। का विनाश करके लोगों ने अपने पैर पर आप ही कुल्हाड़ा मार यही नहीं, उन्होंने अपनी सन्तान का भविष्य भी अन्धकारमय डाला है। निर्बलों की सन्तान कितनी सबल होती होगी ? आज के युवकों का तेजोहीन बदन चेहरे पर पड़ी हुई झुर्रियाँ, झुकी कमर और गड्ढों में धँसी हुई आँखें देख कर शर्म आये बिना रहता। यह सब जीवनतत्त्व की न्यूनता का द्योतक है। वीर्य के ऐसे-ऐसे भयंकर परिणाम दिखाई दे रहे हैं फिर भी कुछ लोग लज्जा के वश होकर इस सम्बन्ध में प्रकट बात कहने का ि करते हैं। अरे रुई की पोटली में लगी हुई आग कब तक छिपे वह तो आप ही प्रकट होगी। ऐसी स्थिति में वीर्यरक्षा का देना जीवन की प्रतिष्ठा का उपदेश देना है।

जो वीर्य रूपी राजा को अपने काबू में कर लेता है वह संसार पर अपना दावा रख सकता है। उसके मुख-मण्ड विचित्र तेज चमकता है। उसके नेत्रों से अद्भुत ज्योति टपकती उसमें एक प्रकार की अनोखी नम्रता होती है। वह प्रसन्न, और प्रमोदमय जीवन का धनी होता है। उसके इस धन के चाँदी-सोने के टुकड़े किसी गिनती में नहीं हैं।

मित्रो ! तुम—ओसवाल भाई—पहले वार क्षत्रिय थे। वाणिज्य में बनियापन बाद में आया है। अपने उन वाणिया

अगर आपने इस सुन्दर शरीर से मुझे जन्म दिया होता तो मुझ में और अधिक तेज आ जाता !"

रंभा लज्जित हुई। वह अर्जुन से पराभूत हुई। उसने अपना रास्ता पकड़ा।

अर्जुन की प्रतिज्ञा थी कि जो मेरे गांडीव धनुष की निन्दा करेगा उसका मैं सिर उड़ा दूंगा। मित्रो ! अर्जुन यदि वीर्यशाली न होता तो क्या ऐसी भीषण प्रतिज्ञा कर सकता था ? कदापि नहीं ! वीर्यबल के सामने शस्त्र का बल तुच्छ है। अर्जुन जब अपने धनुष की निन्दा नहीं सह सकता था तब क्या वह अपने वीर्य की निन्दा सहन कर लेता ? नहीं। क्योंकि वीर्य के बिना धनुष काम नहीं आ सकता। अतएव धनुष कम कीमती है और वीर्य अधिक मूल्यवान है।

हे क्षत्रिय पुत्रो ! ऐ पाण्डवों की सन्तानो ! जिस वीर्य के प्रताप से तुम्हारे पूर्वजों ने विश्व भर में अपनी कीर्ति-कौमुदी फैलाई थी, उस वीर्य का तुम अपमान करोगे ?

वीर्य का अपमान क्या है और कैसे होता है, इसे समझ लीजिये। लुभावने राग-रंग में लीन होकर विलासमय जीवन व्यतीत करना ही वीर्य का अपमान है। क्या आप 'नोबिल स्कूल' के क्षत्रिय कुमार वीर्य का अपमान न करने की प्रतिज्ञा कर सकते हैं ? आप क्षत्रिय हैं। वीरता के साथ बोलिये—हाँ, हम अपमान न करेंगे।

वीर्य का अपमान न करने से मेरा आशय यह [illegible] आप विवाह ही न करें। मैं गृहस्थ-धर्म का निषेध नहीं गृहस्थ को अपनी पत्नी के साथ मर्यादा के अनुसार रहना वीर्य का अपमान करने का अर्थ है—गृहस्थ-धर्म उल्लंघन करके पर-स्त्री के मोह में पड़ना, वेश्यागामी

अप्राकृतिक कुचेष्टायें करके वीर्य का नाश करना। पितामह भीष्म ने आजीवन ब्रह्मचर्य पाला था। आप उनका अनुकरण करके जीवन-पर्यन्त ब्रह्मचर्य पालें तो खुशी की बात है। अगर आपसे यह नहीं हो सकता तो विधिपूर्वक लग्न कर सकने की मनाई नहीं है। पर विवाहिता पत्नी के साथ भी सन्तानोत्पत्ति के सिवाय—ऋतुदान के अतिरिक्त वीर्य का नाश नहीं करना चाहिये। स्त्रियों को भी यह चाहिये कि वे अपने मोहक हाव-भाव से पति को विलासी बनाने का प्रयत्न न करें। जो स्त्री सन्तानोत्पत्ति की इच्छा के सिवाय केवल विलास के लिए अपने पति को विलास में फँसाती है वह स्त्री नहीं पिशाचिनी है। वह अपने पति के जीवन को चूसने वाली है।

आप परस्त्री-सेवन का त्याग करें, यह किसी पर एहसान नहीं है। यह तो अपने आपके लिए लाभदायक है। कल्याणकारक है। भारतवर्ष का यह दुर्भाग्य है कि आज भारत की सन्तान को वीर्य-रक्षा का महत्व समझाना पड़ता है!

ऐ भीष्म की सन्तानो! भीष्म ने आजीवन ब्रह्मचर्य पालन करके दुनिया के कानों में ब्रह्मचर्य का पावन मन्त्र फूंका था। आज उन्हीं की सन्तान कहलाते हुए उन्हीं के मन्त्र को क्यों भूल रहे हो? भीष्म गंगा का पुत्र था। उसने अपने पिता शान्तनु के लिए आजीवन ब्रह्मचर्य पाला था। ब्रह्मचर्य के प्रताप से उन दिनों भीष्म के बराबर बलशाली संसार में दूसरा कोई नहीं था। लोगों ने हाथ जोड़ कर उनसे प्रार्थना की—'महाराज! आप संसार को हानि पहुँचा रहे हैं।'

भीष्म बोले—कैसे?

लोगों ने उत्तर दिया—अन्नदाता, वीर पुरुषों की सन्तान भी वीर होती है। आप संसार में अद्वितीय वीर्यशाली वीर हैं। आप विवाह नहीं करेंगे तो आपके पश्चात् कौन वीर कहलाने योग्य होगा?

पितामह ने हँसकर कहा—माद्रेयो! तुम ने ठीक कहा। यदि मैं विवाह कर लेता तो मेरी सन्तान और होती। पर मेरे आजीवन ब्रह्मचर्य को देखकर कितनी सन्तान और होगी, इसका भी अन्दाज आपने लगाया?

अहा! पितामह भीष्म ने किस प्रकार प्रश्न को अपने सामने रखकर ब्रह्मचर्य व्रत का आदर्श खड़ा किया, तथा श्रेय के प्रति उनकी ही सन्तान उदासीनता दिखा रही है! यह देखकर पितामह क्या कहते होंगे?

कई श्रावक गर्दन हिलाते हुए कहते हैं—'महाराज, अभी तो मरह्या कोयनी, पाँच दिनरा पचक्खाण करा द्यो। (श्रावक तो मरा है नहीं, पाँच दिन का त्याग करा दीजिये) अफसोस! श्रावक का नाम धराते हैं पर श्रावक के कर्त्तव्यों का ज्ञान ही नहीं है! मानो श्रावक अनुष्ठान के अतिरिक्त विषय-सेवन करता ही नहीं है। इसके बदले यहाँ यह हालत है कि पाँच दिन का त्याग किया जाता है और वह भी इस प्रकार कह कर, मानो महाराज पर एहसान कर रहे हैं! 'पाँच दिनरा पचक्खाण करा द्यो, बत्ता नहीं', कितनी कायरता है! विषय-लम्पटता का कितना दौर चल रहा है, यह इस बात का प्रमाण है और हम समझते हैं—गूंगा 'बा' बोला यही गनीमत है—बोलना तो सीखा! सर्वथा भोग में कुछ त्याग तो अच्छा ही है।

वीर्यरक्षा की साधना करने वाले को अपनी भावना पवित्र बनाये रखने की बड़ी आवश्यकता है। इस भावना के लिए कुत्सित विचारों को पास न फटकने दे। [illegible] शुद्ध वातावरण में रहना, शुचि विचार रखना, [illegible] रखना ब्रह्मचर्य के साधक के लिए परम आवश्यक है। [illegible] वीर्य की [illegible] रक्षा होना सम्भव नहीं है।

बालकों के सम्बन्ध में इन बातों पर ध्यान रखना उनके माता-पिता एवं संरक्षकों का काम है। पर अभागे भारत में जो न हो वही गनीमत है। बचपन से ही बालक-बालिकाओं में ऐसे भाव भरे जाते हैं कि छोटी अवस्था से ही वे बिगड़ जाते हैं। लोग बालिका को प्यार करते हैं तब कहते हैं—'लाली, थारे बींद कैसो लावां ?' और बालक को कहते हैं—'लाल्या, थारे बींदणी कैसी लावां ?' इस प्रकार की विकारजनक बातें बालक-बालिकाओं के कोमल मस्तिष्क में घुस कर उन पर क्या प्रभाव डालती हैं ? इससे वे सोचने लगते हैं कि बालक बींदणी—पत्नी पाने के लिये और बालिकायें बींद—पति प्राप्त करने के लिये ही हुये हैं।

मित्रो ! जरा विचार करो। तुम जिसे प्यार कहते हो—समझते हो, वह प्यार नहीं, संहार है—सन्तान के जीवन को मिट्टी में मिला देने वाला मन्त्र है। यह तुम्हारा आमोद-प्रमोद नहीं है वरन् बालक-बालिकाओं की स्वाभाविक शक्ति को समूल नष्ट कर देने वाला कुल्हाड़ा है।

मित्रो ! दिल चाहता है, लज्जा के पर्दे को फाड़ कर सारी बातें तुम्हें साफ २ बतला दूं; पर परिस्थिति मना कर रही है।

आजकल की शिक्षा की ओर जब दृष्टिनिपात करते हैं तब और भी निराशा होती है। आधुनिक शिक्षापद्धति खोखली नजर आती है। शिक्षा का ध्येय जीवन-निर्माण अथवा चरित्रगठन होना चाहिए। ज्ञान और क्रिया बिना, अर्थात् चारित्रहीन ज्ञान जीवन का बोझ है। आज शिक्षा के नाम पर यही बोझ लादा जा रहा है। आधुनिक शिक्षा तो [illegible] इतनी [illegible] हो गई है कि उसमें चरित्र का कोई स्थान ही नहीं [illegible] होता। यही कारण है कि हमारे देश का [illegible]

रही है। हमारे प्राचीन शास्त्रप्रणेताओं ने ज्ञान का फल चारि
बतलाया है। जिस ज्ञान से चारित्र का लाभ नहीं होता वह ज्ञ
निष्फल है—अकारथ है। उससे जीवन का अभ्युदय-साधन न
हो सकता।

शिक्षा का विषय स्वतन्त्र है और उस पर यहाँ विस्तार-पूर्व
विवेचन नहीं किया जा सकता। अतएव शिक्षा-पद्धति की चर्चा
उठाते हुए विद्यार्थियों के हाथ में आने वाली पुस्तकों के सम्बन्ध
ही दो शब्द कहते हैं। विद्यार्थियों के हाथ में मन बहलाने के लि
प्रायः उपन्यास और नाटक आते हैं। किन्तु बहुत से उपन्यास औ
नाटक ऐसे क्षुद्र लेखकों द्वारा लिखे गये हैं जिनमें कुत्सित भावना
को जागृत करने वाली सामग्री के सिवाय और कुछ नहीं मिलत
जब कभी ऐसी पुस्तक अनजान में हमारे हाथ आ जाती है तब
देखकर दिल दहलने लगता है, यह सोच कर कि ऐसी जघन्य पुस्
विद्यार्थी-समाज का कितना सत्यानाश करती होंगी? इन पुस्तकों
भावों को देखकर हृदय में संताप का पार नहीं रहता।

प्यारे विद्यार्थियो! अगर तुम अपना जीवन सफल औ
तेजोमय बनाना चाहते हो तो ऐसी पुस्तकों को कभी हाथ न
लगाना, अन्यथा वे तुम्हारा जीवन मिट्टी में मिला देंगी। अगर तु
अपने अनुभवशील शिक्षकों से अपने लिये सत्साहित्य का चुन
करा लोगे तो तुम्हारा बड़ा लाभ होगा। इससे तुम्हारे पथ-भ्रष्ट हो
की सम्भावना नहीं रहेगी। तुम्हारा मस्तिष्क गन्दगी का खजान
नहीं बन पायगा।

भाइयो, तुम्हें सत्पुरुषों की संगति करनी चाहिये। हृदय
धार्मिक भावना भरनी चाहिये। जो बुरे विचार तुम्हारे दिमाग में
[illegible] उन्हें उत्तमोत्तम पुस्तकों का पठन करके दूर कर देना चाहिए

प्राचीन काल की माताएँ बचपन में ही अपने बालक को सदुपदेश दिया करती थीं। वे मनचाही सन्तति उत्पन्न कर सकती थीं। मार्कण्डेय पुराण में मदालसा का चरित्र वर्णन किया गया है। इससे विदित होता है कि मदालसा अपने पुत्र को आठ वर्ष की उम्र में तपस्या करने के लिए भेजना चाहती थी। इसके जब पुत्र उत्पन्न हुआ तभी से उसने उसे अपने भावों का पाठ पढ़ाना आरम्भ कर दिया। वही पाठ उसे पालने में लोरियों के रूप में सिखाया गया। गर्भ के संस्कारों से तथा शैशव काल में प्रदत्त संस्कारों के कारण वह पुत्र इतना तेजस्वी और बुद्धिमानी हुआ कि आठ वर्ष की उम्र में संसार त्याग कर वनवासी हो गया। इस प्रकार मदालसा ने अपने सात पुत्रों को तपस्या करने के लिए जंगल में भेज दिया। एक बार राजा ने रानी मदालसा से कहा—'मदालसे, तू सब पुत्रों को जंगल में भेज देती है। मेरा राज्य कौन सम्भालेगा ?'

हँस कर मदालसा ने कहा—नाथ, आप चिन्ता न कीजिये। मैं आपको एक ऐसा पुत्र दूँगी जो महा तेजस्वी महाराजा कहला सकेगा।

मदालसा ने ऐसा ही आठवाँ पुत्र पैदा किया। उसने बड़ी योग्यता के साथ राज्यभार सम्भाला और प्रजा का पालन किया।

भावना क्या नहीं कर सकती ? 'यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी'। जैसी जिसकी भावना होती है उसे वैसी ही सिद्धि मिलती है।

[illegible]

के लिये उपयुक्त है ? तले हुए पदार्थ कितनी हानि पहुँचाते हैं य बात आप लोग जानते होंगे। यह चटपटा और करकरा भोजन करा कर बालक के ब्रह्मचर्य को आग क्यों लगाते हो ? बेचारा बाल निसर्ग, अभ्यासी न होने पर भी सी-सी करता हुआ तुम्हारे जरि चटपटे मसाले खाने का अभ्यासी बनता है। जिन मिर्चों की पिस हुई लुगदी कुछ घण्टों तक हाथ के चमड़े पर रखने से फुंसियाँ उ आती हैं, वे मिर्चें पेट में जाकर आंतों को जला कर कितनी निर्ब बनाती होंगी, यह समझना कठिन नहीं है। बालकों के लिये औ ब्रह्मचर्य पालने वाले युवकों के लिए चटपटे मसाले हलाहल विष समान हैं। उनका त्याग करने में ही कल्याण है।

ब्रह्मचर्य की आराधना करने वालों को—शक्ति की उपासना करने वालों को सात्विक भोजन ही अनुकूल और लाभप्रद होता है यह आयुर्वेद का मत है। सात्विक भोजन मस्तिष्क की शक्ति बढ़ाने वाला, बुद्धि देने वाला और बल उत्पन्न करने वाला है। डाक्टरों भी आयुर्वेद के इस विधान का अनुमोदन करते हैं।

अच्छा एक बात आप बताइए। जवाहरात पेरिस में अधिक है या हिन्दुस्तान में ? अमेरिका और इंग्लैण्ड में सात्विक मोती ज्याद है या भारत में ?

[illegible]

[illegible]

वे पसन्द नहीं करते और आप पसन्द करते हैं। हमारे यहाँ आभूषण इतने अधिक पसन्द किये जाते हैं कि जिनके यहाँ सच्चे माणिक मोती नहीं हैं वे बहिनें अपने बच्चों को सिंगारने के लिए खोटे जेवर पहनाती हैं पर पहनाये बिना नहीं मानतीं। कहीं-कहीं तो लोक-दिखावे के लिए आभूषणों को थोड़े दिनों के लिए भीख मांगी जाती है और उन आभूषणों से हीनता का अनुभव करने के बदले महत्ता का अनुभव किया जाता है। क्या यह घोर अज्ञान का परिणाम नहीं है? आभूषण न पहनने वाले यूरोपियन क्या हीन दृष्टि से देखे जाते हैं? फिर आपको ही क्यों अपनी सारी महत्ता आभूषणों में दिखाई देती है?

आभूषणों से लाद कर बच्चों को खिलौना बनाना आप पसन्द करते हैं, पर उनके भोजन की ओर अत्यन्त उपेक्षा रखते हैं। यह कैसी दोहरी भूल है? ज़रा अपने बच्चे का खाना किसी अंग्रेज बच्चे के सामने रखिये। वह तो क्या उसका बाप भी वह भोजन नहीं खा सकेगा, क्योंकि हमारा भोजन इतना चटपटा होता है कि बेचारों का मुंह जल जाय!

तात्पर्य यह है कि ब्रह्मचर्य पालने वालों को अथवा जो ब्रह्मचर्य पालना चाहते हैं उन्हें विलासपूर्ण वस्त्रों से, आभूषणों से तथा आहार से सदैव बचते रहना चाहिये। मस्तिष्क में कुविचारों का अंकुर [illegible] नहीं लगाना चाहिये [illegible]
[illegible] उत्पन्न करने वाले और [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

अमेरिका, इंग्लैण्ड, जर्मनी और जापान की सरकार, वहाँ के साहित्य पर खूब ध्यान रखती है। वहाँ कुत्सित भावना भरने वाली पुस्तकें विद्यार्थियों के हाथों में नहीं पहुँच सकतीं। यही कारण है कि [illegible] के जीवन से समझी जा सकती हैं।

शिवाजी किसी राजा-महाराजा के पुत्र नहीं थे। वे एक साधारण सिपाही के लड़के थे। उनकी माता जीजी बाई ने बचपन में ही उन्हें रामायण और महाभारत आदि की कथाएँ सुनाईं। मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र तथा पाण्डवों की वीरतापूर्ण पवित्र जीवनियाँ कण्ठस्थ करा दीं। समय पाकर उन्होंने शिवाजी के अन्दर कैसी वीरता और चरित्रनिष्ठा उत्पन्न कर दी, सो आज कौन नहीं जानता? पवित्र कथाओं ने एक साधारण सिपाही के लड़के को महाराजा शिवाजी बना दिया। जनता आज भी उनके नाम से प्रेरणा प्राप्त करती है, उनकी प्रतिष्ठा करती है और उन्हें अत्यन्त आदर की दृष्टि से देखती है। लोग गाते हैं—

शिवाजी न होते तो सुन्नत होती सब की।

एक बार शिवाजी किसी जंगल की गुफा में बैठे थे। उनका एक सिपाही किसी सुन्दरी स्त्री को जबर्दस्ती उठा लाया। उसने सोचा था—इसे महाराज शिवाजी की भेंट करूंगा तो महाराज मुझ पर प्रसन्न होंगे। लेकिन जब उस रोती-कलपती हुई रमणी की आवाज शिवाजी के कानों में पड़ी तो वह उसी समय गुफा से बाहर निकल आये। [illegible] देखते ही सिपाही से कहा—अरे कायर! इस बहिन को यहाँ किस लिए लाया है?

शिवाजी के मुंह से पवित्र शब्द सुनते ही सिपाही चौंक पड़ा। ह सोचने लगा—'गजब हो गया जान पड़ता है। मैं इसे लाया किस लब था और होना क्या चाहता है! चौबेजी छब्बे बनने चले थे दुबे ही रह गये!' सिपाही कुछ नहीं बोला। वह नीची गर्दन किये लज्जित भाव से मौन हो रहा। शिवाजी ने कड़क कर कहा—'जाओ, इस रि को पालकी में बिठला कर आदर के साथ इसके घर पहुंचा आओ।'

मित्रो! एक सच्चे वीर्यशाली और चारित्रवान व्यक्ति के सत्कार्य को देखो। अबलाओं पर दूसरों द्वारा किये जाने वाले अत्याचारों का निवारण करना वीर पुरुष का कर्त्तव्य है, न कि उन पर स्वयं अत्याचार करना। इस कथा से तुम बहुत कुछ सीख सकते हो।

शिवाजी का पुत्र शम्भाजी था। वह शिवाजी से ज्यादा वीर-धीर और गम्भीर था परन्तु वह सुरा और सुन्दरी के फेर में पड़ गया था। सुरा अर्थात् मदिरा और सुन्दरी अर्थात् वेश्याओं से उसे बहुत प्रेम हो गया था।

उन दिनों भारत का सम्राट् औरंगजेब था। राठौर वीर दुर्गादास एक बार शम्भाजी के पास दक्षिण में आया। शम्भाजी शराब के शौकीन थे ही। उन्होंने एक प्याला भर कर दुर्गादास के सामने किया। दुर्गादास ने कहा—क्षमा कीजिये, मुझे तो इसकी आवश्यकता नहीं है। मैंने इसे माता के समर्पण कर दिया है और यह अर्ज की है कि माता! तू ही इसे ग्रहण कर सकती है। मुझ में इसे ग्रहण करने का सामर्थ्य कहाँ!

दुर्गादास ने जो कुछ कहा उसका शम्भाजी पर असर नहीं पड़ा। दुर्गादास वहाँ से रवाना होकर शहर के बाहर किसी बगीचे में ठहर गया।

मध्य रात्रि का समय था। चारों ओर वातावरण में निस्तब्धता छाई हुई थी। लोग निद्रा की गोद में बेसुध हो विश्राम कर रहे थे। ऐसे समय में दुर्गादास को नींद नहीं आ रही थी। वह इधर से उधर करवट बदल रहा था। इसी समय उसके कानों में एक आर्तनाद सुनाई पड़ा। 'हाय! कोई बचाने वाला नहीं है? बचाओ! दौड़ो! रक्षा करो! रक्षा करो! हाय रे!'

दुर्गादास तत्काल उठ कर खड़ा हो गया। उसके कानों में फिर वही करुण-क्रन्दन सुनाई दिया। दुर्गादास ने सोचा—'किसी अबला की आवाज जान पड़ती है। चलकर देखना चाहिए, बात क्या है?' इस प्रकार सोच कर वह बाहर निकले। इसी समय एक अबला दौड़ी आई और चिल्लाने लगी—'रक्षा करो! बचाओ!'

वीर दुर्गादास सान्त्वना देते हुये—बहिन, इधर आ जाओ।

स्त्री को ढाढ़स बँधा। वह अन्दर आकर बैठ गई।

कुछ ही समय बीता था कि हाथ में तलवार लिये शंभाजी दौड़ते हुये वहाँ आये। वह बोले—इस मकान में हमारा एक आदमी आया है।

दुर्गादास—शंभाजी, जरा सोच-विचार कर बात करो।

शंभाजी—(पहिचान कर) ओह दुर्गादास! भाई, तुम्हारे इधर हमारा एक आदमी आया है। उसे हमें लौटा दो।

दुर्गादास—यहाँ कोई आदमी तो आया नहीं है एक औरत आई है।

शंभाजी—जी हाँ, उसी को तो माँग रहा है।

दुर्गादास—मैं उसे हर्गिज नहीं दे सकता। वह मेरी शरण में है

शंभाजी—तुम्हें इससे क्या प्रयोजन है ?

दुर्गादास—प्रयोजन क्या है ? कुछ भी नहीं । मगर कह रहा हूँ, यह मेरी शरण में आई है । मैं क्षत्रिय हूँ । शरणागत की रक्षा करना मेरा परम धर्म है । तुम क्षत्रिय होकर भी क्या यह नहीं जानते ?

शंभाजी—मैं सब कुछ जानता हूँ । सब कुछ समझता हूँ । परन्तु मेरी चीज मुझे लौटा दो वर्ना ठीक न होगा ।

दुर्गादास—मैं अपने धर्म से कैसे च्युत होऊँ ?

शंभाजी—तुम्हारे हाथ में तलवार नहीं है । तलवार होती तो दो हाथ अभी दिखाता ।

दुर्गादास व्यंग की हँसी हँस कर बोले—इस अबला के हाथ में तलवार है, इसलिए तुम इस पर वार करना चाहते हो !

शंभाजी—इतनी धृष्टता ! अच्छा, अपनी तलवार हाथ में लेकर जरा अपना कौशल तो दिखलाओ । आज तुम्हें अपनी शूरवीरता का पता चल जायगा ।

दुर्गादास ने अपनी तलवार सम्भाली । दोनों की मुठभेड़ हुई । मौका पाकर दुर्गादास ने शंभाजी के हाथ से तलवार छीन ली । उन्होंने कहा—कहो शंभाजी, अब क्या करोगे ?

[illegible] हो गया । इतने में उसके [illegible] आ पहुँचे [illegible]

[illegible]

उसका काम था। वह दुश्चरित्र स्त्रियों को—वेश्याओं को—शम्भाजी के पास लाना था। शंभाजी ऐसे बेभान हो गये थे कि उसे अपना मित्र मानते थे और अपने सच्चे हितैषी दुर्गादास को दुश्मन समझते थे।

औरंगजेब का ढिंढोरा पिटा हुआ था कि दुर्गादास को कैद कर लाने वाले को इनाम दिया जायगा। कवालीखाँ को यह अच्छा अवसर मिला। उसने शंभाजी से कहा—'महाराज! इस बन्दी को मुझे सौंप दीजिए। मैं इसे बादशाह के पास ले जाऊँगा और अच्छा इनाम पाऊँगा।'

शंभाजी ने उसे सौंप दिया। उसने बादशाह को ले जाकर सौंप दिया। बादशाह ने कवालीखाँ को अच्छा इनाम दिया।

बादशाह की बेगम गुलेनार बीर दुर्गादास पर मोहित हो चुकी थी। पर उसे दुर्गादास से मिलने का अभी तक अवसर नहीं मिला था। दुर्गादास को कैद हुआ देख उसे बड़ी खुशी हुई। वह बादशाह से बोली—दुर्गादास मेरा पक्का दुश्मन है। उसे मेरे सिपुर्द कर दीजिये। मैं उसे सीधा करूँगी।

बादशाह गुलेनार की उंगली के इशारे पर नाचता था। उसने दुर्गादास को बेगम के सिपुर्द कर दिया।

बेगम को स्वर्ण-अवसर मिल गया। वह रात्रि के समय सोलहों सिंगार करके जहाँ दुर्गादास कैद था वहाँ पहुँची। अपने साथ वह एक लड़के को लेती गई थी। लड़के के हाथ में नंगी तलवार देकर उसने कहा—देखो, भीतर कोई न आने पावे।

बेगम दुर्गादास के पास जाकर बोली—आपको मैंने तकलीफ दी है। इसके लिए माफ कीजिए। मैं आप पर फिदा थी, इसीलिए

बादशाह को कह-सुन कर आपको कैद करवाया है। आपके कैद होने का यह कारण है कि मैं ऐशो-आराम में आपके साथ रहूँ। आपकी खूबसूरती ने आपको कैद करवाया है। मैं तैयार होकर आई हूँ।

दुर्गादास—मेरी माँ, मुझे क्षमा करो। तुम मेरी माँ के समान हो। मैं पराई स्त्रियों को दुर्गा के समान समझता हूँ। तमाम स्त्रियाँ जगज्जननी का अवतार हैं। मुझे माफ करो, बेगम!

गुलेनार—जानते हो दुर्गादास, तुम किससे बात कर रहे हो?

दुर्गादास—मैं नारी रूप में एक माता से बात कर रहा हूँ।

गुलेनार—देखो, कहना मानो। सब तकलीफों से छुटकारा पा जाओगे। दिल्ली की यह बादशाहत मेरे हाथ में है। मैं इस बादशाह को नहीं चाहती। अगर तुम मेरा कहना मान लोगे तो रात ही रात में बादशाह को कत्ल करवा डालूँगी। दिल्ली की बादशाहत तुम्हारे हाथ में होगी।

दुर्गादास—मुझे इस प्रकार बादशाहत की जरूरत नहीं है। तुम्हारी बादशाहत तुम्हीं को मुबारिक हो।

गुलेनार—देखो, खूब समझ-बूझ लो। जैसे बादशाहत देना मेरे हाथ है उसी तरह तुम्हारा सिर उतरवा लेना भी मेरे हाथ की बात है।

दुर्गादास—मुझे बड़ी खुशी होगी अगर मेरा सिर दुर्गारूप तुझ देवी के चरणों में लोटेगा।

दुर्गादास और बेगम के बीच इस प्रकार बातचीत हो रही थी करीब। बादशाह का सिपहसालार उधर होकर जा रहा था। उसने रुक कर दोनों की बातें सुनीं तो वह दंग रह गया। दुर्गादास [illegible] उसके दिल में आदर का भाव जागृत हो गया

बेगम कहीं दुर्गादास की गर्दन न उतार ले, इस भय से भीतर चला गया। दुर्गादास के चरणों में गिर कर उसने कहा 'दुर्गादास, तुम इन्सान नहीं पीर हो; कोई पैगम्बर हो।'

बेगम चौंकी। वह बोली—सिपहसालार, तुम यहाँ कैसे ?

सिपहसालार—इस पैगम्बर को सिर झुकाने के लिए।

गुलेनार—इतनी गुस्ताखी ?

सिपहसालार—यह बदनसीबी ?

गुलेनार—ज़बान सँभाल ! किससे बात कर रहा है ?

सिपहसालार—मैं सब सुन चुका। अपनी अक्लमन्दी रहने दो। असत्य स्वभावतः निर्बल होता है। बेगम थर-थर काँपने लगी। सेनापति ने दुर्गादास को मुक्त कर दिया और जोधपुर की रवाना करने लगा।

दुर्गादास ने कहा—मैं बादशाह का बन्दी हूँ। तुम मुझे कर रहे हो। कदाचित् बादशाह आन गये तो तुम विपदा में आओगे। बादशाह तुम्हारा सिर उतार लेंगे।

सेनापति—आप निश्चिन्त रहें। मेरा सिर उतारने बाधा नहीं।

इधर दुर्गादास रवाना हुआ और उधर बेगम गुलेनार ने [illegible] अपने प्राण त्याग।

[illegible]

सुरा-पिशाचिनी ने अनेक राजों-महाराजों और सरदारों के कलेजे चूस लिये हैं। इस पिशाचिनी की बदौलत कई-एक अकाल में ही मृत्यु के मुंह में चले गये हैं। हे क्षत्रिय-पुत्रो ! जिस राक्षसी ने तुम्हारे वीरों का शिकार किया, क्या उसका तुम आदर करोगे? इस राक्षसी को ठोकर मारो और दुनिया से इसका नामनिशान मिटा डालो।

आज अमेरिका वाले कानून बनाकर इसे रोक रहे हैं। अगर इसके सेवन से किसी प्रकार का लाभ होता तो वे लोग इसे रोकने के लिए कानून का आश्रय क्यों लेते? वे लोग जिस वस्तु को हानिकारक समझते हैं उसे रोकने का और जिसे अच्छा समझते हैं उसे बढ़ाने का उद्योग करते हैं। उनका यह गुण हमें सीखना चाहिए।

मित्रो ! जिस प्रकार शराब हानिकारक है, उसी प्रकार मांस भी हानिकारक है। यह दोनों वस्तुएँ ब्रह्मचर्य के पालन में बाधक हैं। मनुस्मृति में मनुजी ने आदेश दिया है कि किसी प्राणी की हिंसा नहीं करनी चाहिए और न मांसभक्षण ही करना चाहिए।

मांस खाने से बुद्धि ठीक नहीं रहती। यूरोप में इसकी परीक्षा की गई थी। पाँच हजार विद्यार्थी शाकाहार पर और पाँच हजार मांसाहार पर रक्खे गये थे। छः महीने बाद इस प्रयोग का परिणाम प्रकट किया गया तो मालूम हुआ कि शाकाहारी विद्यार्थी बुद्धिमान, नम्र और नीरोग रहे और मांसाहारी इसके विपरीत सिद्ध हुए।

मनुष्य स्वभावतः मांसाहारी प्राणी नहीं है। मांसाहारी प्राणियों के नाखून तेज और दांत नुकीले होते हैं [illegible] मांसाहारियों के बच्चे [illegible] है और उनकी [illegible] इस [illegible] है कि [illegible] नहीं रखता है

सकता। अतएव मांस भक्षण करना मनुष्य के लिए प्रकृति-विरुद्ध है। लेकिन मनुष्य अपने विवेक को तिलांजलि देकर सर्वभक्षी बन गया है। खान-पान के विषय में मनुष्य, पशुओं से भी गया-बीता है। पशु अपनी प्रकृति के अनुसार आहार लेता है पर मनुष्य मांस आदि सभी कुछ खा जाता है! इस प्रकार यह स्पष्ट है कि मनुष्य प्रकृति-विरुद्ध व्यवहार करने के कारण ही पशुओं की अपेक्षा बहुत अधिक परिमाण में बीमारियों का शिकार बनता है। ब्रह्मचर्य-पालन के लिए प्रकृति के अनुकूल आहार-विहार की अत्यन्त आवश्यकता है। जो प्रकृति के अनुसार चलेगा—वही सुखी होगा—वही कल्याण का पात्र होगा।*

भीनासर,
७—८—२६.

*बीकानेर के नोबिल स्कूल (राजकुमार विद्यालय) के छात्रों के समक्ष दिया गया भाषण (सम्पादक)

हँसते हँसते, खेल-कूद में कर डालते हैं, जिन कार्यों को मजाक मात्र कर किया जाता है वही कार्य जब भयंकर रूप धारण करके शैतान के रूप में सामने आता है, तो मनुष्य कातर बन जाता है। उस समय उसकी स्थिति अत्यन्त दयनीय हो जाती है। उस समय अपने कर्म का पश्चात्ताप करने पर भी फल भोगे बिना छुटकारा नहीं मिलता।

मित्रो ! यह हमारे लिए कितने सौभाग्य की बात है कि ज्ञानि के अनुभव द्वारा लिखे शास्त्र हमें पहले से सावधान रहने के लि चेतावनी दे रहे हैं। जिनके कान हैं वे ज्ञानियों की चेतावनी सुनें अगर नहीं सुनेंगे तो फिर पश्चात्ताप ही पल्ले पड़ेगा !

आदमी सौ बार कुपथ्य का सेवन कर ले और उसका नतीजा उसे मिल जाय। बाद में वैद्य या प्रकृति कुपथ्य सेवन करने के लिए उसे सावधान कर दे, फिर भी वह न माने तो किसका गिना जायगा ? बस न मानने वाले मनुष्य का ही। प्रकार हमारे दुःखों के कारणों को शास्त्र स्पष्ट-रूप से बतला रहा अगर हम उन कारणों से नहीं बचे तो यह हमारा ही दोष हो। जो इन कारणों को समझ कर बचने का प्रयत्न करेगा, वह सकेगा और उसकी आत्मा की रक्षा हुए बिना न रहेगी।

मित्रो ! आज रक्षाबन्धन का त्यौहार है। आप सब लोगों ने रक्षा-राखी-बँधवाई होगी, पर आपको यह भी पता है कि यह रक्षा बन्धन का त्यौहार कब से और किस आशय से चला है ? रक्षाबंधन के इस त्यौहार को हमें पन्थों न जुदे जुदे कारणों से प्रचलित हुआ बतलाया है [illegible] कुछ भी [illegible] बताया पर यह निश्चित है [illegible] बहुत [illegible] तक मनाया [illegible] साथ मनाया जाता [illegible] में भी मनाया जाता है। इसमें

यह निष्कर्ष निकलता है कि रक्षाबन्धन के दिन कोई ऐसी घटना घटी होगी जिसका प्रभाव समग्र भारतवर्ष में व्यापक रूप से पड़ा होगा। उसी घटना के स्मारक रूप में इस त्यौहार की प्रतिष्ठा हुई है। यह त्यौहार अकेले ब्राह्मण, अकेले क्षत्रिय, अकेले वैश्य या अकेले शूद्र ही नहीं मनाते वरन् चारों वर्णों के लोग समान भाव से मनाते हैं। वास्तव में आर्य-जनता ने इस त्यौहार को प्रचलित कर एक बड़ा भारी काम किया है।

भिन्न-भिन्न धर्मों के साहित्य में रक्षाबन्धन के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न घटनाओं का उल्लेख मिलता है। इन विभिन्न घटनाओं में कौन सी अधिक महत्वपूर्ण है और कौन नहीं, इस चर्चा की आवश्यकता नहीं है। यहाँ तो यही बताना उपयोगी होगा कि इन घटनाओं से क्या शिक्षा ग्रहण की जा सकती है?

रक्षाबन्धन त्यौहार के विषय में हिन्दू शास्त्रों में जो कथा लिखी हुई है, उसका संक्षेप इस प्रकार है :—

राजा बलि दैत्यों का राजा था। उसने दान, यज्ञ आदि क्रियाओं से अपने तेज की इतनी वृद्धि की कि देवराज इन्द्र भयभीत हो गया। उसने सोचा—'अपने तेज के प्रभाव से बलि इन्द्रासन पर बैठ जायगा और मुझे इन्द्र पद से भ्रष्ट कर देगा।' इन्द्र ने अपने बचाव का उपाय खोजा। जब उसे कोई कारगर उपाय नजर न आया तो वह विष्णु भगवान की शरण गया। विष्णु भगवान से उसने प्रार्थना की—'प्रभो! रक्षा कीजिये। दैत्य हमें दुःख दे रहे हैं। वे हमारा राज्य छीनना चाहते हैं।' विष्णु भगवान ने इन्द्र को [illegible]

[illegible]

वामन—विष्णु बोले—रहने के लिए सिर्फ साढ़े तीन पैर जमीन

बलि ने उनके ५२ अंगुल के छोटे वामन को देख कर हँसते हुए कहा—इतना ही क्या माँगा ? कुछ तो और माँगो।

वामन—इतना दे दोगे तो बहुत है।

राजा बलि ने स्वीकृति दे दी। विष्णु ने अपने वामन रूप के जगह विशाल रूप धारण किया। उन्होंने अपनी तीन लम्बी डगों में स्वर्ग, नरक और पृथ्वी—तीनों लोक नाप लिए। इसके बाद बलि से कहा—तीन पैर तो हो गये, अब आधे पैर-भर जमीन और दे !

बेचारा बलि किंकर्तव्यमूढ़ हो गया। वह और जमीन कहाँ से लाता। परिणाम यह हुआ कि वह अधिक जमीन न दे सका। तब विष्णु ने उसके मस्तक पर पैर रखकर उसे पाताल में भेज दिया।

इस प्रकार दैत्यों द्वारा होने वाले उपद्रवों को मिटा कर विष्णु ने भारत-भूमि को सुरक्षित बनाया।

जैन शास्त्रों में इस त्यौहार की कथा इस प्रकार है :—

विष्णुकुमार नाम के एक जैन मुनि बड़े तेजस्वी और महापुरुष थे। इनके समय में चक्रवर्ती राजा का राज्य था। उसके प्रधान का नाम नमूची था। राजा ने वचन-बद्ध होकर एक बार सात दिन के लिए राज्य के समस्त अधिकार नमूची को दे दिये। नमूची कट्टर नास्तिक और प्रबल द्वेषी था। उसे साधु शब्द से भी चिढ़ होती थी। वह अपने राज्य में से समस्त साधुओं को निकालने लगा। साधु बड़े संकट में पड़े। तब विष्णुकुमार मुनि नमूची के पास गये और बोले—भाई, अन्य साधुओं को अपने राज्य में रहने दो या न रहने दो, परन्तु मैं तो राजा का भाई हूँ, कम से कम मुझे तो साढ़े तीन पैर जमीन रहने के लिए दे ...

नमूची ने कहा—मैं साधु मात्र से घृणा करता हूं। अपने राज्य में एक भी साधु को रहने देना नहीं चाहता। पर तुम राजा के भाई हो अतएव तुम्हें साढ़े तीन पैर जमीन देता हूं।

नमूची के वचन देने पर विष्णुकुमार मुनि ने अपनी विशिष्ट विक्रिया शक्ति से तीन पैरों में ही तीनों लोक नाप लिये। बाकी जमीन न बचने से अन्त में नमूची के प्राणों का अन्त हुआ और साधुओं के कष्ट निवारण से सम्पूर्ण भारत में खुशी मनाई गई।

आपने हिन्दू शास्त्र और जैन शास्त्रों की कथायें सुनीं। दोनों कथाओं में कितनी समानता है, यह कहने की आवश्यकता नहीं है। विष्णु ने दैत्य राजा का विनाश कर इन्द्र की रक्षा की और जैन कथा के अनुसार विष्णु कुमार ने नमूची को दण्ड देकर साधुओं की रक्षा की। परन्तु मैं इन दोनों कथाओं से प्रतिध्वनित होने वाला रूपक आध्यात्मिक दृष्टि से घटाता हूं।

इन्द्र का अर्थ है—आत्मा। इन्दतीति-इन्द्रः—आत्मा। इस प्रकार अनेक स्थलों पर आत्मा के अर्थ में इन्द्र शब्द का प्रयोग किया गया है। इस इन्द्र (आत्मा) को अहंकार रूपी दैत्य हराता है। तब इन्द्र घबराकर आत्मबल रूपी विष्णु से प्रार्थना करता है—त्राहि माम् त्राहि माम्—मेरी रक्षा करो—मुझे बचाओ। मेरी नैया पार लगाने वाले तुम्हीं हो। आत्मबल अपनी विशेष शक्ति रूप पैर फैला कर स्वर्ग, नरक और पृथ्वी को नाप लेता है। अब आपे का आवश्यकता और रहती है तब सिद्ध स्थान प्राप्त कर आनन्द कर देता है।

इस कथा का वर्णन [illegible]

न्धन है, वह कर्त्तव्य का बन्धन है, वह धर्म का बन्धन है ! राखी के
न साधारण से प्रतीत होने वाले बन्धन में कर्त्तव्य की कठोरता बँधी
, सर्वस्व का उत्सर्ग बँधा है। राखी बँधवाने वाले को प्राण तक
र्पण करने पड़ते हैं।

नागौर (मारवाड़) के राजा के राज्य पर एकबार
ादशाह ने चढ़ाई की। उनकी पुत्रीने अपने पिता से आज्ञा लेकर एक
ात्रिय को भाई बनाने के लिए राखी भेजी। यद्यपि उस क्षत्रिय का
ागौर के राजा से मनमुटाव था, दोनों में परस्पर शत्रुता थी; फिर
ी वह राखी का तिरस्कार नहीं कर सका। राखी का तिरस्कार करना
अपनी वीरता का तिरस्कार करना है, अपने कर्त्तव्य की अवहेलना
करना है पवित्र मर्यादा का अतिक्रमण करना है और कायरता का
प्रकाश करना है। यह सोचकर क्षत्रिय ने राखी स्वीकार कर ली।
बादशाह ने जब नागौर पर चढ़ाई की तब उस वीर क्षत्रिय ने अपनी
बहादुर सेना के साथ बादशाह की सेना पर धावा बोल दिया।

बादशाह की फौज पराजित हुई। नागौर के राजा ने उस क्षत्रिय
का उपकार माना। दोनों का विरोध शान्त हुआ। नागौर-पति ने
अपनी कन्या का विवाह उसके साथ कर देना चाहा। जब कन्या के
पास यह संवाद पहुँचा तो उसने कहा—यह मेरे भाई हैं। मैंने राखी
भेज कर उन्हें अपना भाई बनाया है। भाई के साथ बहिन का विवाह-
सबंध कैसे हो सकता है ?

रक्षा-बन्धन के साथ उत्तरदायित्व का बन्धन किस प्रकार आता
है यह समझने के लिए यह एक घटना आपके सामने उपस्थित की
गई है। भारतीय इतिहास में इस प्रकार की अनेक घटनाएँ घटी हैं।
तात्पर्य यह है कि [illegible] समाज के [illegible] रक्षा करने के लिए
[illegible]

आज महाजन अपनी बहियों को, चौपड़ियों को, दावात के कलम को, तराजू को, बाँटों को—व्यापार के सभी उपकरणों राखी बाँधते-बँधाते हैं, पर अनेक भाई रक्षा को धाँधा कर उसकी हँ बना डालते हैं। इन वस्तुओं पर रक्षा बाँधने का अभिप्राय भी होना चाहिए कि बहियों में झूठा जमा-खर्च न लिखा जाय, कलम द्वारा झूठी इबारत न लिखी जाय, तराजू से कम-ज्यादा न तोला ज बाँट खोटे न हों, आदि। पर आज यह सब कुछ हो रहा है। ब में खोटा जमा-खर्च लिख कर, जाली दस्तावेज बना कर, झूठे गव दिला कर, अन्याय से-धोखे से-दस्तखत करा कर और तरा कम-ज्यादा तोल कर, तथा इसी प्रकार की अन्य कार्रवाई व प्रामाणिकता का अन्त कर रहे हैं।

जैसे बहिन भाई और स्त्री पुरुष, आपस में रक्षा का सम जोड़ते हैं, इसी प्रकार राजा और प्रजा में भी रक्षा सम्बन्ध जाता था।

राजा और प्रजा के इस मधुर सम्बन्ध के समय राजा प्र सम्भव उपाय से प्रजा की सुख-शान्ति के लिये, प्रजा के अभ्युद लिए चेष्टा करता था। वह प्रजा के सुख को ही राज्य की सफल की कसौटी समझता था। उसके समस्त कार्यों का मुख्य और एक ध्येय यही होता था कि प्रजा किस प्रकार अधिक से अधिक सु समृद्ध और सम्पन्न हो। प्रजा की रक्षा करना राजा का प्र कर्त्तव्य था। राजा जब इस प्रकार से बर्त्ताव करता था, प्रजा अपने को सेवक समझता था तब प्रजा भी सब प्रकार से राजा सेवा के लिए तैयार रहती थी। आज यह सब बातें कहने-सुनने लिए रह गई हैं। आज राजा स्वार्थान्ध होकर प्रजा को चूस चाहता है इसलिए प्रजा राजा का अन्त करने का उद्योग कर राजा के स्थान के विरोधी बन गये हैं।

बाँधते हैं। प्राचीन काल के ब्राह्मणों की रक्षा पैसों की नहीं, धन दौलत की नहीं, कल्याण कामना की थी। उस समय न केवल ब्राह्मण ही, वरन् क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र भी परस्पर राखी बाँधते थे। आज जैसी घृणा पहिले के समय में नहीं थी।

आज बहुत से भाई 'पखाल' बनाने वालों से घृणा करते हैं। मैं पूछना चाहता हूँ, आप लोगों में से कितने ऐसे हैं जिनके पेट में पखाल का पानी नहीं है? आप सभी के पेट में पखाल का पानी मौजूद है। तो आप पखाल का प्रयोग करते हैं, पखाल से प्रेम करते हैं, पर पखाल बनाने वाले से प्रेम नहीं करना चाहते। हाय हाय! यह कैसी विपरीत बुद्धि है! आप जूते पहन कर पैरों को सर्दी-गर्मी और काँटों-कीचड़ से बचाना चाहते हैं, उसके लिए जूतों को चाहते हैं पर जूते बनाने वालों को नहीं चाहते! क्या कहूँ, प्यारे मित्रो! जितना जूतों को चाहते हो, उतना भी जूता बनाने वालों को न चाहो तो यह मनुष्यता का घोर अपमान है। मानव-जीवन के प्रति यह अक्षम्य अपराध है। इस तथ्य को समझो! उनसे प्रेम करो, उनके साथ सद्व्यवहार करो। उन्हें राखी बाँधो और उनसे राखी बँधवा कर निर्मल प्रेम की धारा बहा दो।

आज बीकानेर रियासत के प्रधान-मन्त्री आये हैं। मैं उन्हें राखी बाँधना चाहता हूँ। पर मेरी रक्षा भाव रूप है द्रव्य रूप नहीं। द्रव्य रक्षा मैं रख ही नहीं सकता और न उसके रखने की आवश्यकता है। मेरी भाव-रक्षा धर्म की रक्षा है, कर्त्तव्य की रक्षा है। भाव रक्षा बाँध कर मैं अपने शरीर की रक्षा कराना नहीं चाहता। मैं चाहता हूँ—धर्म की रक्षा हो, कर्त्तव्य की रक्षा हो।

आज भारत कन्या [illegible] और [illegible] की ओर हा[illegible] [illegible] रक्षा बाँधना चाहता हूँ। [illegible] भारत कन्या की रक्षा

को स्वीकार कीजिए। राज्यसत्ता जिस कौशल के साथ भारत की रक्षा कर सकेगी, उस प्रकार की रक्षा दूसरी शक्ति द्वारा होना कठिन है।

आज भारत लुट रहा है, पिट रहा है, आर्तनाद कर रहा है। राज्य-सत्ता उस ओर तनिक भी ध्यान दे तो उसके समस्त दुःखों का अन्त हो सकता है। किसी शहर में १०-२० घर लुट जायँगे, अथवा १०-५ लाख रुपयों का डाका पड़ जायगा, इस चिन्ता से राज्य अनेक प्रकार की व्यवस्था करता है और अपना उत्तरदायित्व समझ कर रक्षा का भार उठाता है। पर इस देश में एक ऐसा गुप्त चोर घुसा हुआ है जो अज्ञान प्रजा को—मूर्ख जनता को—अपनी प्रबल शक्ति के साथ दिनोंदिन लूट-खसोट कर दीन-दरिद्र बना रहा है। उसने करोड़ों की सम्पत्ति लूट कर समुद्र पार भेज दी है और इस देश को भिखारी बना दिया है। वह गुप्त चोर भयानक राक्षस है। उसका शरीर एक है, सिर बहुत से हैं। वह रावण से अधिक भयंकर है—प्रबल है। उसका अन्त करने के लिए तेजस्वी राम की आवश्यकता है।

इस महारावण के अनेक सिर हैं। उनमें से, मैं अपनी कल्पना के अनुसार वीर्यनाश को मुख्य मानता हूँ। इसने भारतीय प्रजा को निस्तेज, निर्बल बना दिया है। वीर्यनाश का पोषण करने में बाल-विवाह की कुप्रथा ने सब से अधिक सहायता पहुँचाई है। इस संबंध में मैं नोबिल स्कूल के विद्यार्थियों के सामने एक भाषण कर चुका हूँ। अतएव विस्तार से आज नहीं कहूँगा।

मैंने भारत के अनेक प्रान्तों का भ्रमण किया है पर इस कुत्सित विवाह का जितना प्रचलन बीकानेर राज्य में देखा, उतना शायद ही कहीं होगा।

विवाह शक्ति प्राप्त करने के लिए किया जाता है। शक्ति के लिए मंगल बाजे बजवाये जाते हैं। शक्ति के लिए ज्योतिषी से ग्रहादिक का सुयोग पूछा जाता है। शक्ति के लिए सुहागिनों का आशीष लिया जाता है। परन्तु जहाँ अशक्ति के लिए यह सब काम किये जाते हों, वहाँ के लोगों से क्या कहा जाय ? जो अशक्ति के स्वागत-सत्कार के लिए यह सब समारोह करता हो उस मूर्ख को किस पदवी से अलंकृत करना चाहिये ?

बाल विवाह करना अशक्ति का स्वागत करना ही है। इससे शक्ति का नाश होता है। अतएव चाहे कोई जैन श्रावक हो, वैष्णव गृहस्थ हो अथवा और कोई हो, सब का कर्त्तव्य है कि अपनी सन्तति के हित के लिए—संतान की रक्षा के लिए इस घातक प्रथा को आज रक्षा बन्धन के दिन त्याग दें। इसका मूलोच्छेदन करके सन्तान का और सन्तान के द्वारा समाज एवं राष्ट्र का मंगलसाधन करें।

आप मंगल के लिए बाजे बजवाते हैं, मंगल के लिए सुहागिनें आशीष देती हैं, मंगल के लिए ज्योतिर्विद से शुभ मुहूर्त निकलवाते हैं, पर यह स्मरण रखिए कि यह सब मंगल जब अमंगल के लिए किए जाते हैं तब ये किसी काम में नहीं आते। इन सब मंगलों से बाल-विवाह के द्वारा होने वाला अमंगल दूर नहीं हो सकता। छोटी-छोटी उम्र में बालक-बालिका का विवाह करना अमंगल है। ऐसा विवाह भविष्य में हाहाकार मचानेवाला है। ऐसा विवाह त्राहि-त्राहि की आवाज से आकाश को गुंजाने वाला है। ऐसा विवाह देश के [illegible] का सत्यानाश करने वाला है। इस प्रकार के विवाह से देश का जीवन [illegible] का ह्रास हो रहा है यह शारीरिक क्षमता की न्यूनता [illegible] का जन्म दे रहा [illegible] सन्तान [illegible] समाज का [illegible]
[illegible]

अपनी सन्तान का अनिष्ट मत करो। उसके भविष्य को घोर अन्धकार से आवृत मत बनाओ। जिसे तुमने जीवन दिया है, उसी के जीवन का सत्यानाश मत करो। अपनी सन्तान की रक्षा करो।

यह बालक दुनिया के रक्षक बनने वाले हैं, ऐ भाइयो ! छोटी उम्र में विवाह करके इन्हें संसार की कोल्हू में मत पीलो।

यह बालक गुलाब के फूल से सुकुमार हैं, इन पर दाम्पत्य का पहाड़ मत पटको। बेचारे पिस जाएँगे।

बालक निसर्ग का सुन्दरतम उपहार है। इस उपहार को लापरवाही से मत रौंदो।

मित्रो ! किसी रथ में दो छोटे-छोटे बछड़ों को जोत दिया जाय और उस रथ पर १०-१२ स्थूलकाय आदमी बैठ जाएँ तो जोतने वाले को आप दयावान कहेंगे या निर्दय ?

'निर्दय !'

इन छोटे-छोटे बच्चों को गृहस्थी-रूपी गाड़ी में जोत कर उन पर संसार का बोझ लादने वालों को आप निर्दय न कहेंगे ?

'कहेंगे !'

साथ ही उन लड्डू उड़ाने वालों को—जो इस घोर अत्याचार का अनुमोदन करते हैं—क्या कुछ कम निर्दय कहा जा सकता है ?

'नहीं !'

[illegible]

मेढ़ना) बैठे हैं। वे राजकीय कानून बना कर, अपराधी चोरी पकड़ कर इस अन्याय को छोड़ने के लिए बाध्य करेंगे।

भारतीय शास्त्र छोटी उम्र में बालकों के विवाह करने का निषेध करता है। बालक की उम्र बीस वर्ष और बालिका की उम्र सोलह वर्ष निर्धारित की गई है। इतने समय तक बालक-बालिका संज्ञा रहती है। अगर आप लोगों को यह बहुत कठिन जान पड़े तो सोलह वर्ष से पहले बालक और तेरह वर्ष से पहले बालिका का विवाह तो कदापि नहीं होना चाहिए। जिस राज्य में योग्य बालक-बालिका का विवाह होता है उसी राज्य के राजा और मन्त्री प्रशंसा के योग्य हैं। जहाँ प्रजा इसके विपरीत आचरण करती हो वहाँ के वीर राजा और प्रजावत्सल मन्त्री का कर्त्तव्य हो जाता है कि वे अपने राज्य की जड़ को खोखला बनाने वाले आचरणों पर तीव्र प्रतिबन्ध लगा दें।

जिस राज्य की प्रजा बलवान होगी वहाँ चोरी आदि का भय नहीं रहेगा। राज-कर्मचारियों को चोरों और लुटेरों के पीछे अपनी शक्ति व्यय नहीं करनी पड़ेगी और वह शक्ति प्रजा के लिए उपयोगी अन्य कार्यों में लगाई जा सकेगी। इससे विपरीत जिस राज्य में प्रजा निर्बल होती है, उस राज्य को उसकी रक्षा करने के लिए पर्याप्त शक्ति व्यय करनी पड़ती है, काफी परिश्रम करना पड़ता है, फिर भी यथोचित शान्ति कायम नहीं रह पाती। जहाँ सौ सिक्ख या गोरखे पहरेदार खड़े हों वहाँ चोर की हिम्मत चोरी करने की हो सकती है? नहीं। इसी प्रकार जिस राज्य की प्रजा बलवान होगी वहाँ चोरों और डाकुओं की दाल न गल सकेगी।

बलवान प्रजा में से बलवान साधु निकलने की उम्मीद की जाती है। निर्बल और हतवीर्य प्रजा में से [illegible] नहीं निकलेगा जो दुनिया का कुछ भी भला करने में समर्थ न हो सके।

स्वामी दयानन्द सरस्वती के धार्मिक विचारों से मेरी मान्यता भिन्न है। किन्तु अन्य अनेक बातों में मैं उन्हें प्रेम की दृष्टि से देखता हूँ। उन्हें विष दिया गया था और विष के प्रभाव से उनका शरीर फूट-फूट कर चूने लगा था। फिर भी उनके मुख पर तेज झलक रहा था। उनके पास एक नास्तिक रहता था। वह इस विषम-स्थिति में भी उनका आत्मबल देखकर चकित रह गया था। इस दृश्य ने उसे नास्तिक से आस्तिक बना दिया।

डाक्टरों का कथन था कि यदि ऐसा विष किसी साधारण मनुष्य को दिया जाता तो घंटे-दो घंटे में ही उसके प्राण-पखेरू उड़ जाते। मगर उन्होंने ब्रह्मचर्य के प्रताप से ३–४ मास निकाल दिये। जहर के कारण सारा शरीर फूट निकला है पर मुंह पर विषाद की रेखा तक नजर नहीं आती। दिन पर दिन अपने नये तात्त्विक विचार लोगों को सुनाते हैं और स्वयं आनन्द में मग्न रहते हैं।

दयानन्द सरस्वती ने ब्रह्मचर्य के प्रताप से भारतवर्ष में एक सामाजिक क्रान्ति पैदा कर दी। उन्होंने सामाजिक विषयों में विचारों की रूढ़ता एवं गुलामी का अन्त किया और राष्ट्रीयता का पाठ पढ़ाया।

अहा ! ब्रह्मचर्य में कैसी अद्भुत शक्ति है ! कितना चमत्कार है। किन्तु इस अद्भुत शक्ति को न पहचान कर लोग अबोध बालकों का विवाह कर रहे हैं ! यह कितने परिताप की बात है !

आज के राजा-महाराजा अगर उनका आनरेरी काम करने वाले साधु सन्तों का सत्संग करें तो उन्हें अपने कर्त्तव्य का सरलता से बोध हो सकता है और जिस कार्य के लिए उन्हें बड़ी-बड़ी तनख्वाहों के पदाधिकारी नियत करने पड़ते हैं, फिर भी कार्य यथावत् नहीं होता वह अनायास ही सम्पन्न हो सकता है।

बाल-विवाह की भयानक प्रथा का अगर जनता स्वयमेव त्याग नहीं करती तब उसका एक ही उपाय रह जाता है और वह यह कि राज्य अपनी सत्ता से कानून का निर्माण करे और दुराग्रहशील व्यक्तियों के दुराग्रह को छुड़ावे। मनुष्य की आयु का ह्रास करने में बाल-विवाह भी एक प्रधान कारण है। अमेरिका, जर्मनी और जापान आदि देशों में १५० वर्ष की आयु के हट्टे-कट्टे तन्दुरुस्त पुरुष मिल सकते हैं; वहाँ भारतवर्ष की औसत आयु पच्चीस वर्ष की भी नहीं है। भारतवर्ष का यह कैसा अभाग्य है!

देश की इस दुर्दशा में भी भारत के साठ-साठ वर्ष के बूढ़े विवाह करने के लिए तैयार हो जाते हैं। बूढ़ों की इस वासना ने देश को उजाड़ डाला है। आज विधवाओं की संख्या कितनी ज्यादा बढ़ गई और बढ़ती जाती है, यह किसे नहीं मालूम? आप थोकड़ों पर थोकड़े गिन लेते हो पर कभी इन विधवाओं की भी गिनती आपने की है? कभी आपने यह चिन्ता की है कि इन विधवा बहिनों का निर्वाह किस प्रकार होता है?

इस प्रकार एक ओर बाल-विवाह मानव-जीवन को जर्जर रहा है और दूसरी ओर वृद्ध-विवाह विधवाओं की संख्या बढ़ाने का बीड़ा उठाये है। मित्रो! अगर रक्षाबन्धन के त्यौहार से लाभ उठाना है तो इन घातक रिवाजों को दूर करके समाज और देश की रक्षा करो।

भारत में शिक्षा की भी बहुत कमी है। जो शिक्षा दी भी जाती है वह इतनी निकम्मी है कि शिक्षा प्राप्त करने वाले युवक किसी काम के नहीं [illegible] गुलामी के लिए तैयार [illegible] जाते हैं और गुलामी [illegible] [illegible]

[illegible]

वे अपने को समाज का एक अंग मान कर समाज के श्रेय में अपना श्रेय एवं समाज के अमंगल में अपना अमंगल नहीं मानते। समाज में व्यक्ति का वही स्थान है जो विशाल जलाशय में एक जल-कण का होना है। जलकण अपने आपको जलाशय से भिन्न माने तो क्या यह ठीक होगा? इसी प्रकार प्रत्येक व्यक्ति जब सामाजिक भावना से हीन हो जाता है, अपनी सत्ता स्वतन्त्र और निरपेक्ष समझने लगता है, तब समाज का उत्थान रुक जाता है, राष्ट्र की प्रगति अवरुद्ध हो जाती है। ऐसे लोगों से विश्व-सेवा की आशा ही क्या की जा सकती है?

पहले यह नियम था कि पहले शिक्षा, पीछे स्त्री मिलती थी। प्रत्येक बालक को ब्रह्मचर्यमय जीवन व्यतीत करते हुए विद्याभ्यास करना पड़ता था। अब आजकल प्रायः पहले स्त्री और पीछे शिक्षा मिलती है। जहाँ यह हालत है वहाँ सुदृढ़ शारीरिक सम्पत्ति से सम्पन्न प्रकाण्ड विद्वान् कहाँ से उत्पन्न होंगे?

जैसा कि अभी कहा जा चुका है, आजकल जो शिक्षा मिलती है उसका जीवन-सिद्धि के साथ कोई सरोकार नहीं है, वह बेकार-सी है, फिर भी वह बड़ी खर्चीली है। विद्यार्थियों पर पुस्तकों का इतना अधिक बोझ लादा जाता है कि बेचारे रोगी बन जाते हैं। चेहरे पर तेज नहीं, ओज नहीं, रूखा और पीला चेहरा, धँसी हुई आँखें, कृश शरीर, गालों में गड्ढे, यही सब विद्यार्थी की सम्पत्ति होती है। युवावस्था में जब यह दशा होती है, जवानी में बुढ़ापा आ जाता है तब बुढ़ापे में क्या होगा यह विचारणीय प्रश्न है। अकसर अनेक युवकों का बुढ़ापा ही नहीं आने पाता और वे विधवा की संख्या में एक की वृद्धि करके चल बसते हैं।

विधवा बहनों की दशा पर जब मैं विचार करता हूँ तब [illegible]

आँखों में आँसू आ जाते हैं। कई भाइयों के हृदय इतने कठोर ब
हुए हैं कि इन बहिनों के दुःख को देख करके भी वे नहीं पसीजते
याद रखना, इन विधवाओं के हृदय से निकली हुई आहें वृथा नहीं
जाएँगी। समय आने पर वे ऐसा भयंकर रूप धारण करेंगी कि
भारत को भस्मी-भूत कर डालेंगी। आप पशुओं पर दया करते है
छोटे-छोटे जन्तुओं पर करुणा की वर्षा करते हैं पर इन विधव
बाइयों की तरफ ध्यान ही नहीं देते ! क्या इनका जीवन सूक्ष्म कीट
पतंगों और पशु-पक्षियों से भी गया-बीता है ?

दीवान साहब ! विधवाओं की दशा सुधारने और उनकी र
करने का भार आपकी गोद में सौंपा जा रहा है। आप इसे उठावें
हमारे उपदेश को लोग इतना न मानेंगे जितना आपका आदे
मानेंगे। 'भय बिन होत न प्रीत' उक्ति प्रसिद्ध है।

भय से मेरा यह आशय नहीं है कि जनता को डराया-धमका
जाय अथवा मार पीट का अवसर उपस्थित हो। मेरा आशय यह
कि आप कुछ जोर देकर कहेंगे तो काम बन जायगा।

मित्रो ! अवसर आया है तो एक बात और कह देना चाह
हूँ। आप लोगों में एक और हानिकारक रिवाज देखता हूँ—बच्चों
जेवर पहनाना। बच्चों को आभूषण पहनाने में आपका उद्देश्य क
है ? इसके दो ही उद्देश्य हो सकते हैं—या तो बालक को सुन्द
दिखाना अथवा अपनी श्रीमन्ताई प्रकट करना। मगर यह दो
उद्देश्य भ्रम-पूर्ण हैं। बालक स्वभाव से ही सुन्दर होता है। व
निसर्ग का सुन्दरतर उपहार है। उसके नैसर्गिक सौन्दर्य को आभूष
दबा देते हैं—विकृत कर देते हैं। [illegible] सच्चे सौन्दर्य को परख है
[illegible] अवलम्बन नहीं [illegible] विचारवान व्यक्ति जड़ पदा
[illegible] बनना [illegible] नहीं [illegible] जो लोग आभूषणों में सौंद

निहारते हैं, कहना चाहिए कि उन्हें सौन्दर्य का ज्ञान ही नहीं है। वे सजीव बालक की अपेक्षा निर्जीव आभूषणों को अधिक चाहते हैं। उनकी रुचि जड़ता की ओर आकृष्ट हो रही है।

अगर अपनी श्रीमत्ता प्रकट करने के लिए बालक को आभूषण पहना कर खिलौना बनाना चाहते हो तो स्वार्थ की हद हो गई! अपनी श्रीमन्ताई प्रकट करने के लिए निर्दोष बालक का जीवन क्यों विपत्ति में डालते हो? जिसे अपनी धनाढ्यता का अजीर्ण है—जो अपने धन को नहीं पचा सकता वह किसी अन्य उपाय से उसे बाहर निकाल सकता है। उसके लिए अपनी प्रिय सन्तान के प्राणों को संकट में डालना क्या उचित है?

बच्चों को आभूषण पहनाने से मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अनेक हानियाँ होती हैं। उन सब का कथन करने का समय नहीं है। परन्तु एक प्रत्यक्ष हानि तो आप सभी जानते हैं। गहनों की बदौलत कई बालकों की हत्या होती है। हत्या की घटनाएँ आये दिन घटती रहती हैं। फिर भी आप अपना ढर्रा नहीं छोड़ते, यह कितने आश्चर्य की बात है? आपका विवेक कहाँ है? वह कब जागृत होगा?

> आई बापे जरी सर्पिणी के बोका,
>
> त्यांचे संगे सुख ना पावे बाल।
>
> चंदनाचा शूल सोनी यांची बेड़ी,
>
> सुखनिधि कोंडी प्राण नाशी॥

यह पद भक्त तुकाराम का है। थोड़े से शब्दों में कितना मर्म भर दिया है? कहा है—जिस घर में माता सर्पिणी और पिता 'बलाव' बन कर रहे वहाँ बच्चा शान्त कैसे रह सकता है? जिस समाज में

स्त्रियाँ गर्भिणी और पुरुष विमार होते हैं वहाँ मेरे जैसे की स्थि
कैसे हो सकती है ?

मित्रो ! मैंने आपके सामने भारत के शत्रु एक महारावण
सिर्फ एक सिर का वर्णन किया है। समय अधिक हो गया है
मैं दीवान साहब का और अधिक समय लेना नहीं चाहता, अत
व्याख्यान अधिक लम्बा नहीं करता।

विष्णु ने वामन रूप धारण करके बलि का मर्दन किया था
वामन का आशय है छोटा—विनयी। आप भी नम्र बन कर ग
साहब और दीवान साहब से इस महारावण का सिर तोड़ने का वच
लीजिए।

अन्त में एक बात और कह देना आवश्यक है। प्रत्येक हि
गौ को गोमाता के नाम से पुकारता है और उसे श्रद्धाभाव से देख
है। फिर भी उसकी पालना जैसी चाहिए वैसी नहीं हो रही है। गा
के मानव-समाज पर अपरिमित उपकार हैं। उसके उपकारों के प्र
अपनी कृतज्ञता प्रकाशित करने के लिए उसे 'गोमाता' संज्ञा दी ग
है। इस संज्ञा को सार्थक बनाने के लिए उसके प्रति आज जो उपे
दिखाई दे रही है उसका दूर होना आवश्यक है। अमेरिका में भार
की ही गाय से १२० रतल दूध प्राप्त किया जा रहा है। अमेरिका
गाय की सेवा करके सचमुच ही उसके 'माता' पद को सार्थक कि
है। अमेरिका के विद्वानों ने अनेक बड़े-बड़े निबन्ध लिखकर
है कि गाय प्रत्येक दृष्टि से रक्षणीय है। पर गाय को माता कह
पूजने वाले हिन्दुस्तान में गाय की क्या दुर्दशा हो रही है ? उस
यहाँ स्वाचाखच छुरियाँ चल रही है, यह कितनी लज्जा की बात है
बीकानेर के दीवान साहब चाहें तो बीकानेर की गायों को बाहर
जाने से रोक सकते हैं। ऐसा करना न केवल गोवंश पर ही

मानव-प्रजा पर भी बड़ा उपकार होगा, जनता की यह सच्ची सेवा होगी।

मित्रो ! रक्षाबन्धन के दिन आपकी रक्षा के कुछ उपायों का दिग्दर्शन कराया गया है। अगर आप इनकी ओर ध्यान देंगे तो आपका कल्याण होगा।

भीनासर }
१६—८—२७. }

धर्म की व्यापकता

प्रार्थना

धरम जिनेश्वर मुझ हियड़े बसो, प्यारा प्राण समान।
कबहूँ न विसरूँ हो चितारूँ नहीं, सदा अखंडित ध्यान॥ धरम०॥

श्रीधर्मनाथ भगवान की यह प्रार्थना है। इस प्रार्थना में प्रार्थना करने वाले ने धर्मनाथ भगवान् के अखंडित ध्यान की कामना प्रकट की है। धर्मनाथ भगवान का ध्यान और आराधन किस प्रकार किया जा सकता है? वास्तव में धर्म की आराधना ही धर्मनाथ की आराधना है। निर्मल हृदय से, निष्काम भाव से परमात्मा के आदेश का अनुसरण करना ही परमात्मा की सर्वश्रेष्ठ आराधना है। परमात्मा के आदेश के प्रतिकूल आचरण करने वाले, परमात्मा के गुणों का रटन ऊपर-ऊपर से करते रहें और हृदय को पापवासना से मलीन बनाये रक्खें तो उससे क्या लाभ हो सकता है?

कई लोग सोचते हैं कि धर्म की आराधना साधु ही कर सकते हैं, गृहस्थ लोग नहीं। यह विचार भ्रमपूर्ण है। धर्म तत्त्व इतना [illegible] नहीं है कि थोड़े से लोग [illegible] रहें। [illegible] अवतार [illegible] आराधना और [illegible]

को निकाल कर फेंक दो। धर्म सिर्फ साधुओं-त्यागियों के लिए नहीं है पर सारे संसार के लिए है, जैसे प्राकृतिक पदार्थों को—हवा, पानी आदि को—उपयोग में लाने का अधिकार सभी प्राणियों को है, उससे कोई वंचित नहीं किया जा सकता, इसी प्रकार धर्मतत्त्व के पालन करने का अधिकार भी सभी को है। गृहस्थ तो मनुष्य ही है, पर शास्त्रकार तो पशुओं को भी धर्मपालन का अधिकार देते हैं। कोई-कोई पशु भी प्रबल पुण्य के परिपाक में श्रावक के कतिपय नियमों की आराधना करके पंचम गुणस्थान श्रेणी को प्राप्त कर सकता है। जहाँ पशुओं को भी धर्म साधना का अधिकार हो वहाँ मानव मात्र का अधिकार तो स्वयं सिद्ध हो जाता है। यह आश्चर्य की बात है कि भगवान् महावीर के समकालीन श्री गौतम बुद्ध ने अपने संघ में गृहस्थों को स्थान नहीं दिया, पर उसका परिणाम कुछ अच्छा नहीं आया। इसमें विपरीत जैन संघ में श्रावक और श्राविका को स्थान प्राप्त है। इसका परिणाम यह है कि आज जैनों की संख्या अल्प होने पर भी जैन संघ बौद्ध संघ की अपेक्षा अपने मूल भूत उसूलों से अधिक चिपटा हुआ है। यह ठीक है कि उसमें भी अनेक प्रकार के विकार आ गये हैं फिर भी बौद्ध साधु और श्रमणोपासक से जैन साधु और श्रावक की तुलना करने से दोनों का भेद स्पष्ट प्रतीत हुए बिना नहीं रहेगा। यह कहकर मैं किसी धर्म की निन्दा नहीं करना चाहता, अपितु यह बताना चाहता हूँ कि धर्म तत्त्व उदार है, व्यापक है और उसे साधन करने का गृहस्थों को भी अधिकार है।

सूर्य किसी व्यक्ति विशेष के घर पर ही प्रकाश नहीं फैलाता पर जगत् को प्रकाशमय बनाता है। जल किसी खास व्यक्ति की तृषा को शान्त नहीं करता वरन प्रत्येक पीने वाले की प्यास बुझाता है, वायु कुछ विशिष्ट व्यक्तियों के लिए ही नहीं है किन्तु सभी के लिए है। अग्नि किसी राजा के पकवान ही नहीं पकाती पर सभी प्राणि

उससे समान भाव से लाभ उठाते हैं। अगर अग्नि में यह गुण हो, वह केवल राजा के ही काम में आने वाली हो तो क्या आप उसे अग्नि कहेंगे ?

'नहीं !'

इसी प्रकार धर्म सार्व है—सर्वजन-हितकारी है। सभी उसकी आराधना करके कल्याण-साधन कर सकते हैं। जो धर्म कुछ व्यक्तियों के काम आवे वह अपूर्ण है—संकीर्ण है। प्रकृति की—सारी वस्तुओं पर समस्त प्राणियों का अधिकार है। प्रत्येक प्राणी को प्राकृतिक पदार्थों के उपयोग करने का स्वतः सिद्ध हक है। अगर किसी को किसी कुदरती वस्तु से कोई हानि पहुँचती है तो वह दोष उस वस्तु का नहीं है। वस्तु तो अपने स्वभाव के अनुसार गुणों को धारण किये हुए है। उसका अनुचित या अयोग्य व्यवहार करने वाले का ही दोष है कि वह उससे हानि उठाता है। सूर्य सभी को प्रकाश देता है, पर संसार में कुछ प्राणी ऐसे हैं जिनके लिए वह अन्धकार सा उत्पन्न करने वाला बन जाता है। उल्लू और चमगादड़ आदि को सूर्य के प्रकाश में दिखाई नहीं पड़ता। उन्हें रात्रि में ही दीखता है। इन प्राणियों को अगर दिखाई नहीं देता तो क्या यह सूर्य का दोष है ? नहीं। अगर यह दोष है तो उनकी प्रकृति का ही दोष समझा जा सकता है। प्रकृति की वस्तु सब को लाभ पहुँचाती है उसका उपयोग चाहे राजा करे, ब्राह्मण करे, चाण्डाल करे, कोई करे, जंगल में करे, घर में करे, कहीं भी क्यों न किया जाय ! वह सब के लिए समान है। प्रकृति के दरबार में भेदभाव नहीं है—विषमता नहीं है। वैषम्य के बीज तो मनुष्य ने अपने हाथों बोये हैं।

धर्म भी प्राकृतिक है। वस्तु का स्वभाव है। 'वत्थुसहावो धम्मो' की स्थिति में धर्म में भेदभाव की गुंजाइश कहाँ है ?

सर्व साधारण के काम में आने वाले धर्म का लक्षण क्या है? यह प्रश्न उपस्थित होता है। दुनिया में धर्म के आगे अनेक विशेषण लग जाने के कारण साधारण जनता चक्कर में पड़ जाती है कि हम किस विशेषण वाले धर्म का अनुसरण करें? कौन-सा विशेषण हमें मुक्ति प्रदान करेगा? किस विशेषण के द्वारा हमारी आत्म-शुद्धि होगी और जीवन का विकास हो सकेगा? कहीं जैन विशेषण है, कोई 'ईसाई' विशेषण से उसे विशिष्ट बनाता है। कोई-कोई 'मुस्लिम' विशेषण लगा कर अपने धर्म को अलग बताता है। इस पर अगर गहराई के साथ विचार किया जाय तो विदित होगा कि भेद वास्तव में विशेषणों में है। जिसके यह सब विशेषण हैं उस धर्म तत्त्व में कहीं भेद नहीं है। धर्म तत्त्व एक है, अखंड है। उस अखंड तत्त्व के खण्ड-खण्ड करके, अनेकान्त में एकान्त की स्थापना करके, देश काल के अनुसार, लोक रुचि की विभिन्नता का आश्रय लेकर उसमें अनेक विशेषण लग गये हैं। अगर इन सब विशेषणों को अलहदा करके तत्त्व का अन्वेषण किया जाय तो सत्य सूर्य के समान चमक उठेगा। जब धर्म सत्य है और सत्य सर्वत्र एक है तो धर्म अनेक किस प्रकार हो सकते हैं? अस्तु.

जैन सिद्धान्त कहता है—धर्म का तत्त्व प्रत्येक श्रद्धावान को, फिर चाहे वह आर्य हो या अनार्य हो, मिलना चाहिए। धर्म अपूर्ण वस्तु नहीं है, पूर्ण है। इसी कारण वह सब से प्रेम करता है, किसी को धिक्कार नहीं देता।

धर्म की व्याख्या साधारण नहीं है। धर्म में किसी भी प्रकार के खान-पान का, जाति-पाँति [illegible] भेदभाव की, ऊँच-नीच की कल्पना को, राजा [illegible] अथवा गरीब—अमीर [illegible] भावना को [illegible] में स्थान नहीं है। धर्म की दृष्टि में यह सब समान हैं।

धर्म के भीतर एक महान तत्त्व है। उस महान तत्त्व की लब्धि सब को नहीं होने पाती—कोई विरला ही उसे प्राप्त करता जिसमें धर्म के प्रति प्रगाढ़ श्रद्धाभाव व और हिमाचल की सी अच है वही उस गूढ़तर तत्त्व को पाता है।

जब प्रह्लाद पर अभियोग लगाया गया तब हिरण्यकश्य पुरोहितों को आज्ञा दी कि कोई ऐसा अनुष्ठान करो जिससे प्र का अन्त हो जाय। जिस धर्म का अन्त करने के लिए मैंने लिया है, प्रह्लाद उसी को फैला रहा है। मेरे ही घर में जन्म ले मेरे शत्रु—धर्म को प्रश्रय दे यह मुझे असह्य है। मैं धर्म को जी नहीं रहने दूंगा। अगर प्रह्लाद उसे जीवित रखने की चेष्टा तो उसे भी जीवित न रहने दूंगा।

हिरण्यकश्यपु ने प्रह्लाद को बुलाकर समझाया—अरे! इस धर्म को तू छोड़ दे। मैं ही प्रभु हूँ, मैं ही ईश्वर हूँ। मेरे विपरीत आचरण करने से यह भूलोक ही तेरे लिए पाताल लोक—नरक बन जायगा। मेरा कहना मान। बाल-हठ मत कर। धर्म तुझे ले डूबेगा।

प्रह्लाद ने निर्भय और निश्चिन्त भाव से कहा—तुम और हो, प्रभु कुछ और हैं। धर्म के अनुकूल आचरण करना मेरे जीवन का उद्देश्य है। धर्म का अनुसरण करने से ही अगर कोई विरोध समझता है तो मेरा क्या दोष है? मैं आपसे नम्र प्रार्थना करता हूँ कि आप अपना दुराग्रह त्याग दें। धर्म अमर है, अविनाशी है। वह किसी का मारा मर नहीं सकता। वह किसी के नाश किये नष्ट हो नहीं सकता। जो धर्म का नाश करने की इच्छा करता है, वह अपने ही विनाश को आमन्त्रित करता है। आप अपना अनिष्ट न करें, यही भावना है

प्रह्लाद की नम्रतापूर्ण किन्तु दृढ़ता से व्याप्त वाणी सुनकर हिरण्यकश्यपु क्रोध के मारे तिलमिला उठा। उसने अपनी लाल—लाल भयानक आँखें करके प्रह्लाद की ओर देखा, मानो अपने क्रोधानल से ही हिरण्यकश्यपु को जला देगा। फिर कहा-विद्रोही छोकरे! अब अपने धर्म को याद करना। देखें तेरा धर्म तेरी क्या सहायता करता है? अभी तुझे धर्म का मधुर फल चखाता हूँ।

इतना कह कर उसने पुरोहितों को आज्ञा दी—'इसे आग में डाल कर जीवित ही जलाकर खाक कर दो!' पुरोहितों ने तत्काल हिरण्यकश्यपु के आदेश का पालन करना चाहा। उन्होंने धधकती हुई आग में प्रह्लाद को बिठलाया। उस समय की प्रह्लाद की धर्मश्रद्धा एवं समभावना से आकृष्ट होकर दैवी शक्ति ने चमत्कार दिखाया। वह अग्नि अपनी भीषण ज्वालाओं से पुरोहितों को ही जलाने लगी। प्रह्लाद के लिए वह जल के समान शीतल बन गई। आग से बचने के लिए प्रह्लाद ने एक श्वास भी प्रार्थना में नहीं लगाया उसने अपने बचाव के लिए परमात्मा से एक शब्द में भी प्रार्थना न की। 'हे ईश्वर! मेरी रक्षा करो' इस प्रकार की एक भी कातर उक्ति उसके मुख से नहीं निकली। वह जानता था—आत्मा जलने योग्य वस्तु नहीं है। वह आत्मा है—आत्मा का कोई कुछ बिगाड़ नहीं सकता। उसे कोई हानि नहीं पहुँचा सकता।

क्षण भर में पुरोहितों के हाहाकार और चीत्कार से आकाश व्याप्त हो गया।

राज्यसत्ता अपनी प्रतिष्ठा कायम रखने के लिए दूसरों को कष्ट देता रहता है। सारे संसार की राजनीति में इसी बात का ध्यान रक्खा जाता है। राज्यसत्ता ने अपनी प्रतिष्ठा की आन्त... लिए प्रतिष्ठा का विस्तार करने के लिए और अपना सत्ता...

बनाये रखने के लिए गत महायुद्ध का भीषण रूप उपस्थित [illegible] था। (और इसीलिए वर्त्तमान में भीषण संहार का नंगा नृत्य हो [illegible] है। इस संहार के सामने गत महायुद्ध का ध्वंस भी नाचीज़ ठहर है।—संपादक)

हिरण्यकश्यपु ने अपनी प्रतिष्ठा को कायम रखने के [illegible] प्रह्लाद को उखाड़ना चाहा। पर उसकी दैवी शक्ति इतनी प्रबल [illegible] कि उसके सामने हिरण्यकश्यपु की राजकीय शक्ति कायर बन गई।

मैं कई बार कह चुका हूँ कि धर्म वीरों का होता है, कायरों [illegible] नहीं। वीर पुरुष अपनी रक्षा के लिए लालायित नहीं रहते, व[illegible] अपने जीवन का उत्सर्ग करके भी दूसरे की रक्षा के लिए सदा [illegible] रहते हैं। वे प्रहार करने वाले की झिलमिलाती हुई तलवार को [illegible] कर नहीं डरते। डरना तो दूर की बात है, उनका एक रोम भी [illegible] थरकता। वीर पुरुष प्रहार करने वालों को भी अपना सहाय[illegible] समझता है। उसके विचारों में निराशापन होता है।

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि, सा निशा पश्यतो मुनेः॥

जहाँ अन्य प्राणी अज्ञान रूप अंधकार का अनुभव करते [illegible] वहाँ ज्ञानी पुरुष ज्ञान रूप प्रकाश की अवस्था का अनुभव करते हैं। अन्य आत्माओं को जो अवस्था अन्धकारमय मालूम होती है, [illegible] [illegible]

[illegible]

अंगार रखने वाले को अपना उपकारक ही माना। आप लोग इस कथ
को सदा सुनते हो और स्वीकार भी करते हो, किन्तु जब क्रिया करने
का अवसर आता है तब कुछ और ही रंग दिखाने लगते हो!

जिन्होंने आत्मतत्त्व की उपलब्धि करली है, जो आत्मा के सहज स्वभाव में रमण करने लगे हैं, वे मारने वाले को भी उपकारी समझते हैं। उनका मन्तव्य होता है कि हम जहाँ कुछ समय के बाद पहुँचने वाले थे वहाँ इस उपकारी ने जल्दी ही पहुँचा दिया है।

मित्रो! धर्म शस्त्रों से नहीं होता। धर्म अनुष्ठान से—क्रिया से होता है। वीर पुरुष ही धर्म का पालन करते हैं। क्षत्रिय को तलवार का बल होता है, पर वीरों में वीर, दैवी शक्ति का धनी, आत्मबल में सम्पन्न महात्मा तलवार के बल को हेय समझता है। वह अपनी आत्मिक शक्ति के द्वारा तलवार वाले की भी रक्षा करता है।

जिस समय प्रह्लाद को डराने के लिए धधकाई हुई अग्नि ...गोदियों को ही भस्म करने लगी, तब प्रह्लाद ने प्रार्थना की—प्रभो! ...न कातरों का त्राण करो! यह बेचारे अज्ञान प्राणी अपने भौतिक ...ल को ही प्रबल समझ बैठे हैं। इनकी बुद्धि अज्ञान से मलीन है, ...इन्हें क्षमा करो, दया करो, जिससे इन्हें शान्ति मिले।

इस प्रकार से अपने उत्पीड़क के लिए प्रार्थना का एक शब्द [illegible] ... प्रह्लाद जैसों के ... भस्म करने के लिए [illegible]

प्रह्लाद बोला—

> सर्वत्र दैत्या समतामुपेत्य,
> समत्वमाराधनमच्युतस्य ॥

सब प्राणियों पर समभावना लाओ। मारने वाले को भी मा
दो। मारने वाले से मत डरो। डरने वाला ही क्रोध करता है औ
क्रोध करने वाला ही डरता है। जहाँ डर आया कि क्रोध आते दे
नहीं लगती। अगर आपके पास एक ऐसी वस्तु हो जो त्रिकाल
भी आपको छोड़ कर कहीं नहीं जा सकती तो आप उस वस्तु
लिए चिन्ता करेंगे?

'नहीं!'

जिस वस्तु के न छिनने का आपको भरोसा है, उसे छीनने
अगर कोई प्रयत्न करता है तो क्या आप उस पर क्रोध करेंगे?

'नहीं!'

क्रोध तभी आता है जब उस वस्तु के जाने का भय हो।

जिस मनुष्य के पास सौ टच का सच्चा सोना है, और जि
सोने के सच्चे एवं विशुद्ध होने का विश्वास है, वह उस सोने
परीक्षा से भयभीत होगा? अगर कोई आदमी उस सोने को तपा
चाहे तो क्या सोने का स्वामी घबराएगा? कदापि नहीं। वह कहेग
'लीजिए खूब तपाइए। सच्चा हो तो लीजिए।' इससे विपरीत जिस
पास सच्चा सोना नहीं है नकली है, वह तपाने के लिए कहने पर क
कहेगा? वह कहेगा—वाहजी वाह! आप मुझ पर इतना भी विश्वा
नहीं करते! अगर आपको मुझ पर विश्वास नहीं है तो रहने दीजि
मेरा सोना मुझे लौटा दीजिए।' इस प्रकार नकली सोने वाले
क्रोध आवेगा।

है। मैं एक बार घाटकोपर (बम्बई) में था, तब गोदरेज वंश के एक पारसी सज्जन, जिनकी गोदरेज की तिजोरियाँ बहुत प्रसिद्ध हैं मुझ से मिलने आये। उन्होंने मुझे एक पुस्तक बताई। मैं अंग्रेजी भाषा जानता नहीं था, अतएव एक दूसरे मुनि से मैंने वह पुस्तक सुनी। उसमें एक स्थल पर लिखा था कि फ्रान्स देश में एक ऐसे डाक्टर हैं जो बड़ी मेद की गाँठों को सिर्फ हाथ फेर कर गिरा देते हैं जैसे कोई वृक्ष पर से फल झाड़ लेता है। यह सब क्या है? आत्म-बल का चमत्कार, मानसिक शक्ति की करामात!

आजकल के मनोविज्ञानवेत्ता मानवीय मन की शक्तियों की खोज में लगे हुए हैं। एक मनुष्य ने अपनी मानसिक-शक्ति के द्वारा बड़े जहाज को उलट दिया था। मेस्मेरेज़्म एक हल्की जाति की मानसिक क्रिया है। भारतीय साहित्य में उसे त्राटक कह सकते हैं। यह एक बहुत ही हल्की क्रिया मानी गई है। इसका साधक भी जब मनचाहा काम कर सकता है तब बड़े मानसिक शक्ति वाले क्या काम न कर सकेंगे? साधारण मनोबल वाला भी यदि मनुष्य को हँसा सकता है, रुला सकता है, इधर-उधर हिला-डुला सकता है तब ऊँची श्रेणी की मानसशक्ति प्राप्त कर लेने वाले को कौनसा काम असाध्य हो सकता है? 'केसरी' पत्र के सम्पादक श्री केलकर ने चार इञ्च मोटे अष्ट-पहलू लोहे के डण्डे को केवल मानसिक-शक्ति के द्वारा कपड़े की तरह मोड़ कर रख दिया था। क्या यह साधारण तौर पर आश्चर्य का काम है?

जिस मनुष्य का आत्म-विश्वास प्रगाढ़ हो जाता है, उसके लिए ऐसा कोई काम नहीं रहता जिसे वह कर न सकता हो। लाखों करोड़ों रुपये खर्च करने पर भी जो काम मजबूरी नहीं होता, उसे आत्मबली बात की बात में कर डालता है। आत्मबलशाली के सामने सब शक्तियाँ हाथ जोड़ खड़ी रहती हैं।

हे भागवतो भाइयो ! हे वैष्णवो ! और हे जैन भाइयो ! आपने म
के भीतर ईश्वर की मूर्त्ति है। आपने मन्दिरों में मूर्तियाँ देखी होंगी
कोई मूर्ति चाहे जैन मन्दिर में देखी हो, चाहे वैष्णव मन्दिर में दे
हो, वह वस्त्र पहने देखी हो चाहे बिना वस्त्र की, चाहे पद्मासन
देखी हो, चाहे खड्गासन वाली देखी हो, वह किसी भी अवस्था
हो, पर वह है मनुष्य की ही आकृति में। कलाकार मनुष्य ने उस
निर्माण किया है, क्योंकि वह प्राकृतिक नहीं है। इस कारण व
मनुष्याकृति में बनी है। हाँ, मूर्ति के निर्माण में जो कुछ भेद दिख
देता है वह उसके बनवाने वाले की रुचि और श्रद्धा का भेद है
जिसकी जैसी रुचि और जैसी श्रद्धा थी, उसी के अनुसार वह बन
गई है। पर बनाने वाले ने एक भूल की है। वह भूल क्या है ? उस
अपनी आकृति उसमें डाली है। आप बताइए कि आपकी आ
मूर्त्ति में है या मूर्त्ति की आकृति आप में ? आपकी आकृति उसमें
तब बनाई हुई मूर्त्ति के प्रति इतना प्रेम और आदर हो तथा जो मू
कुदरती है—प्राणी-मात्र का निर्माण प्रकृति ने किया है, उसमें न
की जाय, यह कैसी बात है ? जो कृत्रिम मूर्त्ति से प्रेम करता है व
अकृत्रिम से घृणा करता है, उसे क्या कहा जाय ?

कोई भाई सोचेंगे कि मैं उनकी मूर्त्तियों की निन्दा करता है
सम्प्रदायों की भिन्नता के कारण एक दूसरे का अपमान करता
निन्दा करता है, यह सही है। पर मैं किसी की निन्दा नहीं करत
धर्म के नाम पर निन्दा रूप अधर्म का आचरण करना मुझे रुचि
नहीं है। मैं जो सत्य समझता हूँ वही कहता हूँ इसके अतिरि
यहाँ निन्दा का कोई प्रश्न ही खड़ा नहीं होता मैं तो अकृत्रिम मू
की महत्ता का दिग्दर्शन कराना चाहता हूँ। देखिए—

देहो देवालय प्रोक्तो, जीवो देव सनातन
त्यजेदज्ञान निर्माल्य, सोऽहं भावेन पूजयेत ॥

यह देह मन्दिर है। इसमें विराजमान आत्मा देव-परमात्मा है। अज्ञान रूपी नर्माल्य (त्याज्य वस्तु) का त्याग करके सोऽहं भाव से इस परमात्मा की सेवा करना चाहिए।

यह 'सोऽहं' भाव क्या है ? इसको स्पष्ट करते हुये एक जैनाचार्य ने कहा है—

> यः परमात्मा स एवाहं, योऽहं स परमस्ततः।
> अहमेव मयाऽऽराध्यः, नान्यः कश्चिदिति स्थितिः॥

अर्थात् जो परमात्मा है वही मैं हूँ। जो मैं हूँ वही परमात्मा है। इस प्रकार सोऽहं का अर्थ है—'मैं ईश्वर हूँ।'

यह आशंका की जा सकती है कि मैं ईश्वर हूँ।' ऐसा कहने और अनुभव करने से तो अभिमान आ जायगा। यह आशंका ठीक है। ऐसा कहने एवं अनुभव करने में अगर अभिमान आ जायगा तो वह कथन एवं अनुभव मिथ्या होगा। अभिमान वृत्ति का त्याग करके जब ऐसा अनुभव किया जायगा अथवा कहा जायगा तभी उसमें सचाई आएगी। अभिमान का आना अनिवार्य नहीं है। इस प्रकार की अनुभूति जिस उच्च भूमिका में प्रवेश करने पर होती है, उसमें अभिमान का भाव शान्त हो जाता है।

मित्रो ! अगर एकान्त में बैठ कर ध्यान का अभ्यास करोगे तो तुम्हें पता चल जायगा कि तुम ईश्वर से भिन्न नहीं हो। जो इस उन्नत अवस्था को प्राप्त करता है वही 'सोऽहं' बन सकता है। आध्यात्मिक भेद करते हुए सोऽहं का रूप इस प्रकार बताया गया है—

> इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः।
> मनसस्तु परा बुद्धियो बुद्धेः परतस्तु सः॥
>
> गीता—३, ४२

देह आदि पदार्थों से इन्द्रियाँ परे हैं, इन्द्रियों से मन परे है, म से बुद्धि परे है और बुद्धि से भी परे सः अर्थात् आत्मा है।

सः अर्थात् आत्मा का ठीक ठीक अभिप्राय समझाने के लि एक बात कहता हूँ।

एक गुरु के दो शिष्य थे। दोनों को सोऽहं का पाठ पढ़ाया ग और उस पर स्वतन्त्र विचार—अनुभव करने के लिए कहा गया।

दोनों शिष्यों में एक उद्दण्ड स्वभाव का था। उसने सावना कुछ की नहीं और सोऽहं—मैं ईश्वर हूँ, इस प्रकार वह अपने आप परमात्मा बन बैठा। वह अपने परमात्मा होने का ढिंढो पीटने लगा। जो मिले उसीसे कहता—मैं ईश्वर हूँ। लोगों ने उस मूर्खता का इलाज करने के लिए उसके हाथों पर जलते अंगार रख दिये। तब वह बोला—हैं! यह क्या करते हो? हाथ पर अंगार र कर मुझे जलाना क्यों चाहते हो?

लोगों ने कहा—'भले आदमी! कहीं ईश्वर भी जलता होगा फिर भी वह मूर्ख शिष्य अपनी मूर्खता को न समझ सका। अपने को ईश्वर कहता ही रहा। एक आदमी ने उसके गाल पर चां मारा। वह बोला—क्यों तुमने मुझे चांटा मारा?

यह आत्मा [illegible] भी चाँटा लगाता है?

[illegible]

शिष्य—जो गुह्य तत्त्व बुद्धि से परे है, जिसकी प्रेरणा से बुद्धि का व्यापार होता है, वह सोऽहं है।

गुरुजी—(प्रसन्नतापूर्वक) हाँ अब तुम समझे। जो कुछ तुम हो वही ईश्वर है। इसी को सोऽहं कहते हैं।

मित्रो! आत्मा का पता आत्मा के द्वारा आत्मा को ही लग सकता है। परन्तु आपने आत्मा के आच्छादनभूत बाह्य पदार्थों को महंगा बना लिया है, अतएव आपकी गति बाहर तक ही सीमित है। बाह्य आवरणों को चीर कर आप भीतर नहीं झांक पाते। आप पूछेंगे—कैसे? मैं कहता हूँ—ऐसे बताइए रूप बड़ा है या आँखें?

आँखें!

तो फिर रूप का लोभ क्यों करते हो? इसी प्रकार अन्यान्य बातों में भी समझना चाहिए। आप रूप, रस, गंध, स्पर्श आदि के लोभ में पड़ गये हैं, इसी से आगे का काम रुका पड़ा है। मछली, मांस लगे हुए जाल के काँटे में फँस जाती है। वह जानती है—मैं मांस खाने जाती हूँ; उसे यह नहीं मालूम कि वह मांस खाने नहीं जा रही वरन मांस देने जा रही है।

मित्रो! मान लीजिए, एक धीवर समुद्र के किनारे जाल के काँटे में मांस लगाकर मछलियाँ पकड़ने की कोशिश कर रहा है। नासमझ मछलियाँ मांस के लोभ में जाल की ओर बढ़ी चली आ रही है। आप दयावान हैं और मछलियाँ अगर आपकी भाषा समझ सकतीं हैं तो आप उनसे क्या कहेंगे? आप उनसे कहेंगे—'बहिनो! जिसके [illegible] तुम दौड़ी चली आ रही हो वह [illegible] नहीं [illegible] है—[illegible] है [illegible] आप जानते हैं [illegible]
[illegible]

कह कर धीरे धीरे में कहेंगी—प्यारे, यह सब अज्ञान हैं, ये निरपराध हैं। इन्हें मत मार।'

जैसे आप मछलियों पर करुणा करते हैं, इसी प्रकार ज्ञानी सारे संसार पर करुणा लाता है। वह कहता है—हे मनुष्यो! आत्म-कल्याण का काम करो। खाने-पीने पर अंकुश रक्खो। ... को आनन्द पहुँचाओ! ऐसा करने में तुम्हारा मनोरथ अवश्य ... होगा।

मित्रो! आज खाने-पीने के मामले में बड़ी गड़बड़ी चल रही है। पहले धर्म के लिए सात्विक भोजन किया जाता था पर अब स्वाद के खातिर पकवानों का भोजन किया जाता है। यह ठीक है, पकवान जीभ को क्षण-भर के लिए भले ही तृप्त कर दें, पर उनसे आयु क्षीण होती है—वे शरीर को जल्दी ही नष्ट कर डालते हैं। अगर आपको विश्वास न हो तो एक आदमी को पन्द्रह दिन तक सिर्फ पकवानों पर रखकर और दूसरे को सिर्फ दाल रोटी पर रखकर देखा जा सकता है। दोनों के स्वास्थ्य की तुलना करने से आपको विदित होगा कि तन्दुरुस्ती के लिए क्या उपयोगी है और क्या हानिकारक है।

आप अट-संट खाकर जीभ की आराधना करते रहें और ईश्वर पद मिल जावे, यह कैसे सम्भव है? जब तक इन्द्रियों की गुलामी नहीं छूटती तब तक ईश्वरत्व की प्राप्ति होना असंभव है।

आप भोजन करते हैं, मगर कुछ काम भी तो करना चाहिए। मेरा आशय सांसारिक प्रपंचों में नहीं [illegible] ईश्वर-भजन से है। भोजन करने वाले को भजन भी करना [illegible] चाहिए। रेल को चलाने के लिए एंजिन में कोयला और पानी [illegible] [illegible] है। ... देना ही नहीं है, अगर [illegible] का ड्राइवर (चालक) [illegible] [illegible] इधर-उधर घुमा

करे और उसके साथ डिब्बे न जोड़े तो क्या वह ड्राइवर रेलवे कम्पनी को कुछ लाभ पहुँचा सकता है ? क्या कम्पनी का व्यवस्थापक उसे उपालम्भ न देगा ? मित्रो ! आप अपने पेट रूपी एंजिन को केवल भोजन ही कराया करोगे या उससे कुछ काम भी लोगे ? हाथ में सुन्दर छड़ी और कलाई पर सुनहरी घड़ी बाँध कर ऐंठ-अकड़ के साथ चलते रहोगे या परोपकार की गाड़ी—डिब्बे भी खींचोगे ? परोपकार करने का अवसर आने पर आप मुँह फेर लेते हो। कोई दुःखी प्राणी आपसे बड़ी आशा और उत्सुकता के साथ कहता है—'प्यारे, हे मालिक, तुम्हारे हाथ से मेरा यह काम हो सकता है। कृपा करके मेरी थोड़ी-सी सहायता कर दीजिए।' तब आप में से बहुत से भाई क्या उत्तर देते हैं ? कहते हैं—'चल बे चल, तेरा काम करें या हवा खाने जाएँ ! जा, अभी मेरे पास समय नहीं है। दिन-भर अपने काम से फुर्सत नहीं और अब तुझ से सिरपची कौन करे ?' दोस्तो ! ऐसे स्वार्थ पर विचारों को धिक्कार है। इस जीवन में जितना बन सके, दूसरों का उपकार करो।

धिक् तेरा जीवड़ा न करता धरम को धिक् तेरा तन धन धिक है जीवन को।
पेट भर्यो पशुधन की नाईं, रात सोयो दिन यों ही गँवाई ॥
पापी को देख के शीस नमावे, धर्मी को देख के बहु बड़बड़ावे ।
धिक् तेरी जननी जो तोहि जायो, नाम बिना सब धान लजायो ॥

यह उपालम्भ अपने लिए ही समझो। मूर्ख ड्राइवर की भाँति अपना एंजिन ही मत घुमाया करो। कहते शरम-सी मालूम होती है कि आप में से कई भाई [illegible] घर-घर आग [illegible] [illegible] [illegible]

सकता है—पर मैं तो केवल यही कहना हूँ कि अपनी शक्ति के
सार अवश्य करो। जो मनुष्य परोपकार के गहरे तत्त्व को
जाना है, उसे दुनियाँ देवता की भाँति पूजती है। उसे जनता
हृदय का हार बना लेती है। उसके लिए सदा-सर्वदा अपना म
समर्पण करने के लिए तैयार रहती है। शास्त्रों में और लौ
इतिहास में ऐसे बहुत से जाज्वल्यमान उदाहरण मौजूद हैं।

मित्रो ! धर्म के इस तत्त्व को प्राप्त करके व्यवहार करोगे
कल्याण होगा।

लूणियों की कोठी
भीनासर
३—८—२७.

अपनी रक्षा नहीं कर सकते ! परतंत्रता की जंजीर में जकड़े हुए प्राणियों को छुड़ाने वाला कौन है ?'

यह बेचारे परतंत्र हैं, पर मारने वाला भी कौन स्वतंत्र है ? वह भी परतंत्र है। वह परतंत्र न होता तो वह पापमय जीवन क्यों बिताता ? मारने वाला परतंत्र क्यों है ? कौन उसे गुलाम बनाते हैं ? उत्तर मिलता है—मारने वाला तृष्णा, लोभ, मोह और अज्ञान आदि का दास है। वह मोह से अन्धा पुरुष प्राणियों का मांस खा कर अपना मांस बढ़ाना चाहता है। वह असहाय, निर्बल और मूक प्राणियों की हत्या करके अपना पोषण करना चाहता है। वह दूसरों के प्राणों की परवाह न करके अपने प्राण बचाना चाहता है। उसे दूसरों की चिन्ता नहीं है। दूसरों का दुःख देख कर उसे करुणा नहीं आती मगर सोचना चाहिए कि यदि ऐसा ही समय मेरे लिए आवेगा तो मेरा क्या हाल होगा ?

आखिर मनुष्य उन प्राणियों को किस कसूर से मारता है ? उन्होंने उसका क्या गुनाह किया है। जिससे वह उनके प्राणों का ग्राहक बनता है ? क्या उन प्राणियों ने उसका कुछ अपहरण किया है ? उसे गाली दी है ? उसका कुछ बिगाड़ किया है ? नहीं, तब वे क्यों मारे जाते हैं ?

यह तमाम बेचारे प्राणी भद्र हैं। इनमें बहुत से घास खाकर अपना गुजर करते हैं। ये प्रकृति की शोभा हैं। प्रकृति की शोभा को नष्ट करके आनन्द मानते हैं, उन मनुष्यों को सजा और बचाने को क्या ? सजा में मज़ा मानने का कुछ हिसाब भी होता है ?

हां, होता क्यों नहीं है। लेकिन हम अपने शास्त्र की बात कह कर यही बतलाना चाहते हैं कि शास्त्रों का इस विषय

क्या मत है ? विज्ञान के जानने वालों ने इस सम्बन्ध में अपनी क्या राय जाहिर की है ?

उनका मन्तव्य है कि गति की प्रतिगति और आघात का प्रत्याघात अवश्य होता है । उदाहरण के लिए किसी पर्वत के पास जाकर आवाज दी जाय कि—'तुम्हारा बाप चोर।' तो उस ध्वनि की प्रतिध्वनि होगी—'तुम्हारा बाप चोर।' जैसी ध्वनि की जायगी वैसी प्रतिध्वनि होगी। अगर कोई अपने बाप को चोर कहलाना चाहे तो वह उक्त ध्वनि अपने मुंह से निकाले। न चाहे तो वह ध्वनि न करे। जैसे प्रतिध्वनि सुन कर अपने बाप को चोर कहा जाने के कारण तुम्हें दुःख होता है, उसी प्रकार दूसरे को भी दुःख होता है। अतएव जो स्वयं कटु शब्द नहीं सुनना चाहता उसे अपने मुंह से कटु शब्द नहीं निकालने चाहिए।

मंगल से मंगल और अमंगल से अमंगल होता है। आघात का प्रत्याघात होना रहता है। आज तुम जो पार्ट दूसरे से करवा रहे हो वही तुम्हें भी कभी करना पड़ेगा। सारांश यह है कि यदि तुम किसी को कष्ट दोगे तो तुम्हें कष्ट मिलेगा। अगर तुम किसी के प्राण लोगे तो तुम्हें भी प्राण देने पड़ेंगे। शास्त्र से गर्दन उड़ाओगे तो कभी गर्दन कटवानी पड़ेगी। दूसरे के शरीर का मांस खाओगे तो दूसरे को मांस खिलाना पड़ेगा।

हाँ, एक बात जरूर है। [illegible]

भी ख्याल नहीं करता, केवल पैसों से अपना जेब भरता है, उसे कोई क्या कहेगा ?

'चोर ! बदमाश !'

उसे दंड मिलेगा ?

'अवश्य !'

यही बात आहार मात्र करने में समझनी चाहिए। तो अपने मौज-शौक के लिए, अपनी जीभ को तृप्त करने के लिए, मूक प्राणियों का मांस खाता है उसे भी दंड मिले बिना न रहेगा।

बालक माता के स्तन से दूध पीता है, यह उसका धर्म अर्थात् स्वभाव है, पर जो बालक स्तन का खून पीना चाहता है उसे क्या बालक कहेगा ? लोग उसे बालक नहीं, चहरीला कीड़ा कहेंगे।

प्रकृति हमें, गाय, भैंस आदि से दूध दिलाती है। इससे हमारा बड़ा उपकार होता है। किन्तु हमारी अधीरता इन पशुओं का अन्त ख़ात्मा कर एक-दो दिन पेट भर कर, अधिक दिनों तक पेट भरने वाले घी-दूध के स्रोत को बन्द कर देती है। मतलब यह कि लोग फलों को धीरे-धीरे खाना देख कर वृक्ष का ही मूलोच्छेदन कर डालते हैं।

किन्तु इन गरीब मूक प्राणियों की वकालत कौन करे ? अचम्भे की बात है कि इनकी करुणा भरी चीख को सुन कर हत्यारों का दिल पत्थर-सा क्यों बना रहता है ? विश्व के सब श्रेष्ठ कहलाने वाले प्राणी का —मनुष्य का— अन्तःकरण इतना कठोर कैसे बन गया है ? यह हद दर्जे की आविवकता क्यों हो गया है। इसका कारण मनुष्य की परतंत्रता है। मनुष्य काम, क्रोध, मोह आदि ने अपने चंगुल

ऐसी बुरी तरह जकड़ लिया है कि वह कुछ कर नहीं पाता। सकी बुद्धि पर काला पर्दा पड़ गया है, जिसके कारण कुछ भी हीं सूझता।

हाँ बैठे हुए अधिकांश भाई अमांसाहारी हैं। वे सोचते होंगे—वल मांसाहारी ही पापी होते हैं। हम पाप से बचे हुए हैं।' लोगों ो दूसरे की किसी बात की टीका सुन कर सन्तोष होता है, मजा ाता है, परन्तु जब उनके किसी काम की टीका की जाती है तब न्हें बुरा लगता है। लेकिन सच्चा आदमी तो वही है जो सची बात हे। हितचिन्तक उसी को समझना चाहिए जो श्रोता की रुचि-रुचि की चिन्ता न कर के श्रोता के हित की बात बतलाए। फिर ोता जिस व्यक्ति पर श्रद्धा रखता है, जिसे अपना पथप्रदर्शक मानता , उस पर तो यह उत्तरदायित्व और अधिक है कि वह अपने श्रोता ो सत्य बात कहे। ठीक ही कहा है—

रूसउ वा परो मा वा, विसं वा परियत्तउ ।
भासियव्वा हिया भासा, सपक्खगुणकारिया ॥

चाहे कोई रुष्ट हो, चाहे तुष्ट हो, चाहे विष ही क्यों न उगलने गे, लेकिन स्वपक्ष को लाभ पहुँचाने वाली, हितकर बात तो कहना ी चाहिए।

जो व्यक्ति अपने श्रोता का लिहाज करता है, अपने श्रोता की अरुचि का विचार करके उसे सत्य तत्त्व का निदर्शन नहीं कराता, रन्तु उसे प्रसन्न करने के लिए मीठी-मीठी चिकनी चुपड़ी बातें करता ै, वह श्रोता का भयंकर अपकार करता है और स्वयं अपने कर्त्तव्य से च्युत होता है। रोगी की अरुचि का विचार करके उसे आवश्यक

तो सारांश यह है कि सच्चिदानन्द की शक्ति अद्भुत है। आ-
अनन्त ज्ञान और अनन्त शक्ति विद्यमान है। इस पर विश्वास
इसकी ओर दृष्टि लगाओ। अन्तर्दृष्टि बनोगे तो अपूर्व प्रकाश मिले

प्रह्लाद अग्नि में डाल दिया गया मगर वह भस्म नहीं हुआ
तब दैत्यों ने पूछा—'ऐ प्रह्लाद! तुमने यह शक्ति कैसे पाई?'
प्रह्लाद ने कहा—

सर्वत्र दैत्याः समतामुपेत्य,
समत्वमाराधनमच्युतस्य ॥

हे दैत्यो! समता धारण करो। तुम्हारे भीतर भी वह
आ जायगी।

प्रह्लाद को कितना कष्ट दिया गया था! वह शस्त्र से काटने
भी न कटा। जहरीले सर्पों से डँसाया गया पर जहर का कुछ
असर न हुआ। मदोन्मत्त हाथियों के पैरों के नीचे कुचलवाने के लि
डाला गया पर हाथी उसे कुचल न सके। वह पर्वत पर से ग
गया मगर चूर-चूर न हुआ। उसे भस्म करने के लिए आग में डा
पर आग ठण्डी हो गई। यह सब किसका चमत्कार था? आ
शक्ति का। अमोघ आत्मिक-शक्ति के आगे तमाम भौतिक शक्ति
बेकाम हो गईं।

यह विज्ञान का युग है। लोग प्रमाण दिए बिना किसी बात
स्वीकार नहीं करना चाहते। वे अपने बाह्य ज्ञान से समझते हैं
आग एक आदमी को जलावे और दूसरे को न जलावे, यह कैसे
सकता है? क्या यह सम्भव है कि शस्त्र से एक आदमी कटे
और दूसरा नहीं? विष पान करने से एक का प्राणान्त होता है

हमें न दी गई तो रण-भेरी बज उठेगी।' जोधपुर वालोंने
'अगर कृष्णाकुमारी का विवाह हमारे यहाँ न किया गया तो
मेवाड़ को धूल में मिला देंगे।'

राणा भीमसिंह कायर था। वह मरने से डरता था। उसे
खूँख्वार भेड़ियों को कुछ भी जवाब देने की हिम्मत न हुई। वह
ही मन घुल रहा था। उसे समझ नहीं पड़ता था कि इस समय
करना चाहिए और क्या नहीं? आखिर किसी ने उसे स...
इस विपदा का कारण राजकुमारी कृष्णाकुमारी है। अगर इसे
दिया जाय तो झगड़ा ही खत्म हो जाय! फिर न रहेगा बाँ
बजेगी बाँसुरी।

प्रताप के शुद्ध वश में कलंक लगाने वाले और मातृभूमि
उन्नत मस्तक को नीचा करने वाले कायर राणा ने यह सलाह मान

सलाह को कार्य में परिणत करने के लिए हृदयहीन ह
राणा ने अपनी प्यारी पुत्री का दूध में विष मिलाकर अपने ही
मे पीने के लिए प्याला दे दिया। भोली-भाली कुमारी को कुछ
न था। उसने समझा—'सदा दासी दूध का प्याला लाकर देती
आज प्रेम के कारण पिताजी ने दिया है।' कृष्णाकुमारी विषमि
दूध पी गई पर उस पर ज़हर का नाम भी असर न हुआ।
दिन उस हत्यारे राणा ने फिर विषमय दूध का प्याला दिया।
को किसी प्रकार की शंका तो थी ही नहीं वह फिर उसे गटगट
गई। आज भी विष का प्रभाव नहीं हुआ। तीसरे दिन फिर
घटना घटने वाली थी कि किसी प्रकार कुमारी के कान में बात
गई। उसने सोचा—हाय मुझे मालूम ही नहीं हुआ,
पिताजी को इतना कष्ट न देना पड़ता मेरी ही बदौलत मेरी मातृभूमि

आपके लिए सौभाग्य की बात अवश्य होगी। अभी मैं सिर्फ यह कहता हूँ कि सब के साथ प्रेम करो, समदृष्टि बनो और जिसे हजार-दो हजार रुपये कर्ज दिये हैं, उस पर ब्याज का ब्याज चढ़ाकर हिसाब को तोड़-मरोड़ कर दुगुने-तिगुने मत बनाओ। अन्याय से धनोपार्जन मत करो। हक पर चलो। तुम्हें सच्चिदानन्द की दिव्य झाँकी दिखाई देगी।

हिंडोला चक्कर खाता है। उस पर बैठने वाले को भी चक्कर आने लगते हैं। इतना ही नहीं, हिंडोले से उतर जाने के पश्चात् भी चक्कर आते रहते हैं। इसी प्रकार संसार-चक्र सदा घूमता रहता है। जब आप हट जाएँगे तब कुछ समय तक आपको चक्कर आते रहेंगे। मगर हिंडोले के चक्करों के समान थोड़े समय के बाद आपके चक्करों का अन्त हो जायगा। उकताने की जरूरत नहीं है।

एक आदमी भरे समुद्र को लकड़ी के टुकड़े से उलीच रहा था। किसी ने उससे कहा—'अरे पगले, समुद्र इस प्रकार खाली कैसे होगा ?' तब उसने उत्तर दिया—'भाई, तुम्हें पता नहीं है। इस समुद्र का अन्त है मगर इस—आत्मा—का अन्त नहीं है। कभी न कभी खाली हो ही जायगा।'

'मित्रो ! यह [illegible] विश्वास के उदाहरण हैं। ऐसे विश्वास से काम करोगे तो [illegible] बन जायगी। विजय आपकी होगी।' [illegible] किसी कार्य को [illegible] काम किया और शीघ्र [illegible] यह असफलता का मार्ग है। [illegible] मिल जाता है

हालैण्ड में एक बादशाह राज्य करता था। उसकी रानी बड़ी सुन्दरी थी। रानी के सौन्दर्य पर मोहित होकर दूसरे बादशाह ने, जो हालैण्ड के बादशाह का चचा लगता था—चढ़ाई कर दी। हालैण्ड का बादशाह अर्थात् आक्रमणकारी का भतीजा हार कर भाग गया। विजेता बादशाह राजमहल में गया। उसने अपने भतीजे की पत्नी से कहा—'प्रिये! तू तनिक भी मत घबराना। मैं तेरे सौन्दर्य पर मोहित हूँ। तेरे लिए ही मैंने यह लड़ाई लड़ी है। अब मैं तुम्हारी प्रसन्नता प्राप्त कर सुख-भोग करना चाहता हूँ। तुम्हारा पति हार कर भाग गया है। उसके लिए चिन्ता मत करो। अब मुझे ही अपना पति समझ कर सुख-पूर्वक रहो।'

रानी सती थी। उसने सोचा—'सची-सची बात कहने से इस समय काम नहीं चलेगा।' अपने सतीत्व की रक्षा के लिए उसने नीति से काम लेने का निश्चय किया। वह नम्र-भाव से, हँसती हुई कहने लगी—'आपका कथन ठीक है, परं मैं आपसे एक वचन लेना चाहती हूँ। वह यह है कि जब तक मैं अपने हाथ से साड़ी [illegible] कर और उसे पहन कर आपके पास न आऊँ तब तक आप मुझ से दूर रहें। अगर आप यह न मानेंगे और बलात्कार करेंगे तो मैं प्राण त्याग दूँगी।'

प्राण त्याग देने को उद्यत हो जाने पर कौन-सा काम नहीं [illegible] जाता? मनुष्य का परिपूर्ण प्रयास हो तो कठिन से कठिन कार्य [illegible] सफलता दिलाता है।

[illegible] ने समझा— [illegible] में साड़ी तैयार हो जाय[illegible] [illegible] ? [illegible]डिया पीजरे में [illegible] [illegible]

एक शहर में डाके बहुत पड़ते थे। वहाँ के महाजनों ने हमेशा की यह आफत पूरी है। सभी सब मिलकर डाकुओं का सामना करें। उन्हें पकड़ें। सब महाजन तैयार हुए। शस्त्र लेकर सन्ध्या समय जंगल की तरफ रवाना हुए। रास्ते में विचार किया—डाकू आधी रात को आवेंगे। सारी रात जागरण करने में क्या लाभ है! अभी सो जाएँ और समय पर जाग उठेंगे।

सब महाजन पंक्तिबद्ध सो गये। उनमें जो सब से आगे था, वह सोचने लगा—'मैं सब से आगे हूँ। अगर डाकू आये तो पहला नम्बर मेरा होगा। सब से पहले मुझ पर हमला होगा। मैं पहले क्यों मरूँ? डाका तो सभी पर पड़ता है और मैं पहले मरूँ, यह कौन-सी बुद्धिमत्ता है? अच्छा है, मैं उठ कर सब के पीछे चला जाऊं!'

वह सब के अन्त में आकर सो गया। अब तक जिसका दूसरा नम्बर था उसका पहला नम्बर हो गया। उसने भी यही सोचा—'पहले मैं क्यों मरूँ?' और वह उठा और सब के अन्त में सो गया। इसी प्रकार बारी-बारी सब खिसकने लगे। सुबह होते-होते जहाँ थे वहीं वापस आ गये।

लड़ाई का काम वीरों का है। वीर पुरुष ही न्याय की प्रतिष्ठा और अन्याय के प्रतीकार के लिए अपने प्राणों को तिनका न समझ कर जूझ पड़ते हैं। इसलिए [illegible] नहीं [illegible] सकते। जिनके लिए प्राण [illegible] सब कुछ हैं [illegible] सर्वोच्च आदर्श मान [illegible] गुलामी को उपदेश समझ [illegible] चुप चाप [illegible] कारण वे लड़ने के लिए [illegible]।

मित्रो ! जो कदम आपने आगे रख दिया है उसे पीछे मत हटाओ। तभी आप विजयी होंगे। आत्मज्ञान प्राप्त करने के लिए आपको वीरों में भी वीर बनना पड़ेगा। किसी ने ठीक ही कहा है—

हरिनो मारग छे शूरानो, नहि कायरनो काम जो ने।

दूसरी लड़ाइयों में तो कदाचित् मौका पड़ने पर ही सिर कटवाना पड़ता है पर हरि को अर्थात् सच्चिदानन्द को प्राप्त करने के लिए पहले ही सिर कटवा कर लड़ना पड़ता है। मगर यहाँ सिर कटवाने का आशय यह नहीं कि जैसे आप पगड़ी उतार कर रख देते हैं वैसे सिर भी धड़ से अलग करना पड़ता है। यहाँ सिर उतारने का अर्थ है, देह के प्रति अहंकार और ममता का त्याग करना। शरीर को खोखा मानना चाहिये और आत्मा को—

> नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि, नैनं दहति पावकः ।
> नैनं क्लेदयन्त्यापो, न शोषयति मारुतः ॥
> अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च ।
> नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः ॥
>
> —गीता अ० २, श्लो० २३—२४

आत्मा को शस्त्र काट नहीं सकते, आग जला नहीं सकती, जल गला नहीं सकता और हवा सोख नहीं सकती।

आत्मा कटने योग्य नहीं है जलने योग्य नहीं है गलने योग्य नहीं है सोखने योग्य नहीं है [illegible] स्थिर अचल है वह अपना ज्ञान शक्ति के [illegible] है, वह [illegible] कभी परिणमन नहीं होता [illegible] वह अचल है—[illegible] है सनातन है

शूरवीर पुरुष ऐसा सोचते हैं। शरीर को आत्मा और धन का स्वामी ऐसा नहीं समझ सकता। कहा है—

> बंदा क्या जाने बंदगी माया का गुलाम।
> बंदा क्या जाने बंदगी मोह का गुलाम॥

जिसने माया के प्रति विमुखता धारण कर ली है जिसने आत्मा को समस्त सांसारिक पदार्थों से निराला समझ लिया है, जो धन का दास नहीं है वही प्रभु की भक्ति कर सकता है। जिसे कोई मोह नहीं है वही भगवद्-भक्ति का आनन्द लूट सकता है।

माया का मालिक होना और बात है और गुलाम होना और बात है। माया का गुलाम माया के लिये झूठ बोल सकता है, अत्याचार कर सकता है, मगर माया का मालिक ऐसा नहीं करेगा। अगर न्याय नीति के अनुसार माया रहे तो वह उसे रक्खेगा, अगर वह अन्याय के साथ रहना चाहेगी तो उसे निकाल बाहर करेगा। यही बात अन्य सांसारिक सुख-सामग्री के सम्बन्ध में समझनी चाहिए।

मित्रो ! इस कसौटी पर अपने आपको कस देखो कि आप माया के मालिक हैं या गुलाम हैं ?

दर्पण आपके हाथ में है। अपना-अपना मुंह देख कर निर्णय कर लीजिए और ...

जिसने स्त्रियों की गुलामी की उसकी क्या गति हुई ? रावण का विचार कीजिए। उसने मन्दोदरी का मालिक होना छोड़कर सीता का गुलाम बनना चाहा तो उसका सर्वनाश हो गया।

सच्चिदानन्द

प्रार्थना

श्रीजिन अजित नमूं जयकारी, तू देवन को देवजी।
'जितशत्रु' राजा ने 'विजया' राणी को, आतमजात त्वमेवजी॥
श्रीजिन अजित नमो जयकारी॥ श्री०॥

प्रत्येक प्राणी सुख की तलाश में है। दुःख किसी को प्रि[illegible]
नहीं लगता। सभी दुःख से बचना चाहते हैं। प्रत्येक प्राणी सु[illegible]
के लिए सदा संघर्ष करता रहता है। सुख प्राप्त करने के लिए मनु[illegible]
ने बड़ी बड़ी लड़ाइयाँ लड़ी पर सुख नहीं मिला। अगर कभी कि[illegible]
[illegible] सुख मिला भी तो क्षण भर के लिए। फिर उसी सुख में से दु[illegible]

आश्चर्य में डालने वाले अद्भुत काम कर डालता है? ... ऐंजिनियर के भीतर जो ऐंजिनियर है उस का नाम है—आत्मा! आत्मा सिर्फ ऐंजिनियर के अन्दर ही नहीं, बरन् तमाम प्राणियों में मौजूद है।

इस आत्मा में जबर्दस्त शक्ति है। वह संसार को ... कर सकती है। जिस साइंस ने आज संसार को कुछ का ... दिया है उसके मूल में आत्मा की ही शक्ति है। आत्मा न हो साइंस का काम एक क्षण भी नहीं चल सकता क्यों कि वह जड़ है।

जड़ साइंस के चकाचौंध में पड़ कर साइंस के निर्माता को नहीं भूल जाना चाहिए। अगर तुम साइंस के प्रति ... रखते हो तो साइंस के निर्माता के प्रति भी अधिक नहीं तो उतनी जिज्ञासा अवश्य रक्खो। साइंस को पहचानना चाहते तो ... को भी पहचानने का प्रयत्न करो

आत्मा की पहिचान कैसे की जाय? लक्षणों से। आत्मा का लक्षण क्या है? शास्त्र बतलाता है—सत्, चित् और आनन्द।

सत्, चित्, आनन्द किसे कहते हैं? सत् का सत् लक्षण क्या चित् किसे कहते हैं? और आनन्द का अर्थ क्या है? इसका ... नलिये—

[illegible]

[illegible] आत्मा सत्।

[illegible]

यह किस प्रकार ? इसे समझ लीजिए। आप कहते हैं—'मैं पहले बच्चा था, मैं युवक बना, मैं वृद्ध हूँ।' यहाँ जिसे आप 'मैं', कहते हैं वह 'मैं' कौन है ? आपके 'मैं' को सब पता है। वह मनोवैज्ञानिक जानता है कि जो 'मैं' बच्चा था, वही 'मैं' युवक हुआ और वही अब मैं वृद्ध हुआ हूँ। अगर आपके ख्याल के अनुसार वह बदलता रहता होता तो उसे इस बदलने की बात की खबर न होती। इससे मालूम जाहिर है कि 'मैं' बदला नहीं, वरन उसने तीनों अवस्थाओं में मौजूद रह कर बदलना देखा है। इसलिए जो स्वयं बदलता नहीं है पर शरीर के बदलने का अनुभव करता है वही 'मैं' आत्मा है। इस प्रकार उसमें बदला न होने से वह 'सत्' है।

कभी मैंने बतलाया था कि पृथ्वी के कणों में परिवर्तन होता रहता है, जल के बिन्दुओं का रूपान्तर हो जाता है, इसी प्रकार दूसरी वस्तुओं का भी बदला होता रहता है, पर आत्मा का न कभी बदला हुआ है, न होता है और न होगा। जो सत् है वह सत् ही रहेगा। सत् असत् नहीं हो सकता और असत् सत् नहीं हो सकता। गीता ने भी इस सिद्धान्त की पुष्टि की है—

नासतो विद्यते भावो, नाभावो विद्यते सतः।

अर्थात् जो पदार्थ असत् है—जिसमें 'नहीं है' ऐसी प्रतीति है वह सत् नहीं हो सकता, और जो पदार्थ सत् है वह सत् ही रहे वह सत् से असत् कभी नहीं हो सकता। उदाहरण के लिए, इस को लीजिए। मेरे हाथ में लकड़ी का जो पट्टा है, यह पहले कि ...न का अंग थी। वृक्ष में भी पहले वह किन्हीं परमाणुओं के ...। समय आने पर फिर कभी परमाणुओं में बदल जाय ... पट्टे पर्याय का बदलना पट्टे का असत् रूप प्रकट कर रहा पट्टा अपने वर्तमान रूप में सत् नहीं है।

यह किस प्रकार? इसे समझ लीजिए। आप कहते हैं—मैं पहले बच्चा था, मैं युवक बना, मैं वृद्ध हूँ।' यहाँ जिसे आप 'मैं', कहते हैं वह 'मैं' कौन है? आपके 'मैं' को सब पता है। वह भलीभाँति जानता है कि जो 'मैं' बच्चा था, वही 'मैं' युवक हुआ और वही अब मैं वृद्ध हुआ हूँ। अगर आपके ख्याल के अनुसार वह बदलता न होता तो उसे इस बदलने की बात की खबर न होती। इससे स्पष्ट जाहिर है कि 'मैं' बदला नहीं, वरन उसने तीनों अवस्थाओं में स्थिर रह कर बदलना देखा है। इसलिए जो स्वयं बदलता नहीं है परन्तु शरीर के बदलने का अनुभव करता है वही 'मैं' आत्मा है। इस प्रकार उसमें बदला न होने से वह 'सत्' है।

कभी मैंने बतलाया था कि पृथ्वी के कणों में परिवर्तन होता रहता है, जल के बिन्दुओं का रूपान्तर हो जाता है, इसी प्रकार दूसरी वस्तुओं का भी बदला होता रहता है, पर आत्मा का न कभी बदला हुआ है, न होता है और न होगा। जो सत् है वह सत् ही रहेगा। सत् असत् नहीं हो सकता और असत् सत् नहीं हो सकता। गीता ने भी इस सिद्धान्त की पुष्टि की है—

नासतो विद्यते भावो, नाभावो जायते सतः।

अर्थात् जो पदार्थ असत् है—जिसमें 'नहीं है' ऐसी प्रतीति होती है वह सत् नहीं हो सकता, और जो पदार्थ सत् है वह सत् ही रहेगा। वह सत् से असत् कभी नहीं हो सकता। उदाहरण के लिए, इस पट्टी को लीजिए। मेरे हाथ में लकड़ी की जो पट्टी है, यह पहले किसी वृक्ष का अंग थी। वृक्ष से भी पहले वह किन्हीं परमाणुओं के रूप में थी। समय आने पर फिर कभी परमाणुओं में बदल जायगी। इस पट्टी पर्याय का बदलना पटटी का असत् रूप प्रकट कर रहा है। पट्टी अपने वर्तमान रूप में सत् नहीं है।

हुए। यह ज्ञानघन आत्मा सूक्ष्म रूप से ज्यों की त्यों है। यह आत्मा का सत्पना है।

सत् का अर्थ व्यापक है। द्रव्य रूप से पुद्गल आदि पदार्थ भी सत् हैं अतएव उनको जुदा करके समझने के लिए आत्मा का दूसरा रूप 'चित्' है। 'चित्' के द्वारा आत्मा के असाधारण रूप का पता लगता है। जो स्वयं प्रकाशमान है, जिसे प्रकाशित करने के लिए किसी और की सहायता अपेक्षित नहीं है उसे 'चित्' कहा गया है। शास्त्र का कथन है कि आत्मा सूर्य से भी अधिक प्रकाशमान है। आत्मा सूर्य को देख सकता है पर सूर्य आत्मा को नहीं देख सकता। इस बात को प्रकाशित करने वाला भी आत्मा स्वयं ही है। साधना के द्वारा विकास को प्राप्त करने वाला आत्मा इस रहस्य का उद्घाटन करता है। एक व्यक्ति दीपक लेकर अन्धकार से व्याप्त कमरे में प्रवेश करता है। वह वहाँ की समस्त दृश्य वस्तुओं को देखता है और साथ ही दीपक को भी देखता है। वह दीपक उसको नहीं देखता, क्योंकि दीपक जड़ है। हम सूर्य को नेत्रों द्वारा देखते हैं, पर वास्तव में देखने की शक्ति नेत्रों की नहीं, आत्मा की है। नेत्र केवल कारण होते हैं। दर्शन-क्रिया का कर्त्ता तो आत्मा ही है। आत्मा न होता तो सूर्य के दर्शन न होते।

अब आत्मा के तीसरे रूप 'आनन्द' को लीजिए। 'आनन्द' से भी आत्मा का पता चलता है। आनन्द किसे कहते हैं? जिसमें देश, काल और वस्तु से बाधा न पड़ती हो और जो अनुकूल संवेदन रूप होता है उसे आनन्द कहते हैं। यों तो साधारणतया इन्द्रियों से आनन्द का पता लगता है परन्तु पूरा आनन्द इन्द्रियों से परे है।

एक आदमी ने मिठाई खाई। वह कहता है—बड़ा आनन्द आया पर शास्त्र कहता है—'आनन्द मिठाई खाने में नहीं है।' आप स्व

सकते हैं कि अगर मिठाई खाने में आनन्द नहीं है तो लोग खाते क्यों हैं? रोग आदि हानि की परवाह न करके, पैसे खर्च करके लोग मिठाई खाते हैं और आप कहते हैं—'आनन्द मिठाई खाने में नहीं है।' इसका संक्षेप में उत्तर यह है कि अगर मिठाई आनन्द रूप हो तो मुर्दे के मुंह में मिठाई डालिए, क्या उसे आनन्द आयगा? नहीं। इसीसे कहते हैं कि आनन्द मिठाई में नहीं, पर मिठाई से परे है।

अच्छा, मुर्दे को जाने दीजिए। कोई जीवित पुरुष भरपेट मिठाई खा चुके, तब उसके सामने पाँच-दस सेर मिठाई रख कर, लट्ठ तान कर सामने बैठ कर कोई उसे खाने के लिए बाध्य करे तो खाने वाले को वह मिठाई आनन्द देगी? नहीं। उस समय मिठाई जहर से भी बुरी मालूम होगी। अगर मिठाई में आनन्द है तो वह हर समय एक सा आनन्द क्यों नहीं देती? इससे प्रकट है कि आनन्द मिठाई में नहीं है। वह कहीं दूसरी जगह है।

इसके अतिरिक्त एक आदमी के लिए जो मिठाई रुचिकर होती है वह दूसरे के लिए अरुचिकर होती है। जो वस्तु एक को आनन्द दे और दूसरे को दुःख पहुँचाए, उसे आनन्द की वस्तु कैसे कहा जा सकता है?

असली आनन्द आत्मा का गुण है। वह तुम्हारे पाप-कर्मों से ढँक गया है। तुम अपने पाप-कर्मों को हटा दो, फिर जान सकोगे कि असली आनन्द क्या है?

आजकल एक शक्कर निकलती है जिसे सेक्रीन कहते हैं। यह सक्रीन साधारण शक्कर से [illegible] गुनी मीठी होती है। सुना जाता है कि एक [illegible] अपना प्रयोग कर रहे थे। जब भोजन का समय [illegible] प्रयोग अधूरा ही पड़ा था। उन्होंने रोटी

सच्चे सुख का मार्ग

प्रार्थना

'अश्वसेन' नृप कुल तिलोरे, 'वामा' देवीनो नन्द ।
चिन्तामणि चित्त में बसेरे, दूर टले दुख द्वंद ॥
जीव रे ! तू 'पार्श्व' जिनवर वंद ॥ जीव० ॥

कर्त्ता कौन है ? इस प्रश्न का उत्तर अनेक विचारकों ने भिन्न भिन्न रूप से दिया है। व्याकरण शास्त्र का विधान है—'स्वतन्त्रः कर्त्ता' अर्थात् जो स्वतन्त्र है जिस पर कोई शासन नहीं करता व जो स्वयं साधनों का प्रयोग करता है वही कर्त्ता है। व्याकरण शास्त्र का यह समाधान सामान्य अनाग्रह करता है। कर्त्ता स्वतन्त्र है,

इस लेने पर भी हानि नहीं होती। प्रश्न फिर भी बना रहता है कि फिर कौन है जो स्वतन्त्र है ?

कोई स्वभाव को कर्त्ता मानता है। उनके मत से विश्व की रचना स्वभाव से हुई है। मगर विचार करने पर इस समाधान से भी पूर्णता नहीं होती। स्वभाव किसी स्वभाववान का होता है। बिना गुणी के गुण का अस्तित्व नहीं हो सकता। स्वभाव अगर कर्त्ता है तो स्वभावी या स्वभाववान कौन है ? इस प्रकार की जिज्ञासा फिर भी रह जाती है, जिसका समाधान स्वभाववाद से नहीं हो सकता।

स्वभाव को कर्त्ता मान लिया जाय और स्वभाववान को न माना जाय, यह ऐसी मान्यता है जैसे दृश्य को स्वीकार करके भी द्रष्टा को स्वीकार न करना। मान लीजिए, एक आदमी दीपक लेकर अँधेरे मकान में जाय। वहाँ वह दीपक को देखे और दीपक द्वारा अन्य वस्तुओं को भी देखे। फिर भी वह कहे कि देखने वाला कोई भी नहीं है! ऐसा कहने वाले व्यक्ति को आप क्या कहेंगे ? क्या देखने वाले का अभाव बताने वाला व्यक्ति स्वयं ही देखने वाला नहीं है ? इस स्थिति में यही कहा जायगा कि देखने वाला अज्ञान के कारण स्वयं अपने अस्तित्व का निषेध कर रहा है।

प्रत्येक कार्य की उत्पत्ति में तीन चीजों की आवश्यकता होती है, कर्त्ता, कर्म और करण। इन तीन के बिना कोई वस्तु नहीं बनती। उदाहरण के लिए घड़ा लीजिए। घड़ा बनाने वाला कुंभार कर्त्ता है, घड़ा कर्म है और मिट्टी, दंड, चक्र, सूत आदि जिन साधनों से घड़ा बनाया जाता है वे सब साधन करण हैं। इन तीन के बिना घड़ा नहीं बन सकता।

[illegible] है [illegible] और [illegible] है [illegible]

और बढ़ जाती है। हमारे कई भाई समझते हैं कि सृष्टि का कर्त्ता कोई है ही नहीं। अगर सचमुच सृष्टि का कोई कर्त्ता नहीं है तो सृष्टि बनी कैसे ?

ईश्वर कर्त्ता है, यह मान्यता भी जगत् में प्रचलित है। मगर उसके संबंध में एक बार स्पष्टीकरण किया जा चुका है। अगर ईश्वर कुम्भार की तरह जगत् के निर्माण में लगा रहता है और वह पर्वत, नदियाँ, समुद्र, रेगिस्तान आदि बनाता है, यह कल्पना ही समझ में नहीं आती। तब कर्त्ता कौन है ?

इस प्रश्न पर अगर बारीकी से, निष्पक्ष होकर विचार किया जाय तो विदित होगा कि कर्त्ता आत्मा है। शास्त्र में कहा गया है—

'अप्पा कत्ता विकत्ता य।'

अर्थात् आत्मा—ही कर्त्ता है और आत्मा ही हर्त्ता है।

आत्मा के बिना अकेले परमाणुओं की क्या ताकत है कि ऐसा रूप धारण कर सकें ?

जो घड़ी आप कलाई पर बाँधे हैं या जो दीवाल पर लटकी है, वह क्या अपने आप ही बनने में समर्थ है ? भले ही इसके बनाने वाले कारीगर को आपने बनाते नहीं देखा पर वह स्वयं अपने बनाने वाले का स्मरण करा रही है। इस प्रकार घड़ी को देख कर सभी लोग घडी बनाने वाले का अनुमान करते हैं, पर शरीर रूपी घडी को देख कर उसके बनाने वाले का अनुमान, या ध्यान करने वाले कितने हैं ? शरीर रूपी यह घड़ी किस अद्भुत कारीगर के कौशल का चमत्कार प्रदर्शित कर रही है ? इसके भीतर विचित्र प्रकार की विस्मय जनक जो शक्तियाँ विद्यमान है, उनका केन्द्र कौन है ? आँख के द्वारा दे

रहता है ? आभूषणों को ठेस न लगने के लिए जितनी सावधान रहती हो उतनी आत्मधर्म को ठेस न लगने देने के लिए सावधान रहती हो

जगत् में जितने पदार्थ आँखों से दिखाई देते हैं वे सब दृश्य हैं, नाशवान हैं और जो इन्हें देख रहा है वह द्रष्टा है, अविनाशी है। दृश्य खेल है और द्रष्टा खेलाने वाला है। जिसकी ऐसी श्रद्धा है वह 'आस्तिक' कहलाता है। जो द्रष्टा को अविनाशी रूप में नहीं मानता वह 'नास्तिक' है।

जिसने द्रष्टा को देख लिया है, पहचान लिया है वह दृश्य के सन्मान मिलने पर अपना सन्मान और अपमान मिलने पर अपना अपमान मानने के भ्रम में नहीं पड़ता। आज दृश्य के पीछे पड़ी हुई दुनिया उसके लिए अपनी सारी शक्ति खर्च रही है। फिर भी सुख की परछाई तक दिखाई नहीं देती।

जो मनुष्य घड़ी को देख कर उसके कारीगर को नहीं पहचानता वह मूर्ख गिना जाता है। इसी प्रकार जो शरीर को धारण कर इसमें विराजमान को नहीं पहचानता और न पहचानने का प्रयत्न करता है उसकी समस्त विद्या-अविद्या है। इसके सब काम व्यर्थ हैं।

अज्ञान पुरुष को जिन पदार्थों के वियोग से मर्मभेदी पीड़ा पहुँचती है ज्ञानी उन का ... संयोग साधारण सी घटना ... [illegible] ... मानता है ... [illegible] ... वियोग ... [illegible] ... अवस्थाओं में वह ... [illegible] ... इसलिए [illegible]

'बहुत से !'

अगर तत्त्वज्ञान सुनाऊँ तो ?

'बहुत थोड़े !'

ऐसा क्यों ? इसीलिए कि लोग अभी उन्हीं पदार्थों में सुख मान रहे हैं। तत्त्वज्ञान सुनना तो उन्हें झंझट मालूम होता है। पर यह स्मरण रक्खो कि सुख धन में नहीं है। गौर से देखो तो पता चलेगा कि धनी लोग अधिक दुखी हैं। अनेक धनिकों की आँखें गहरी धुँसी हुई, गाल पिचके हुए और चेहरे पर विषाद एवं उदासीनता नजर आएगी। पर मस्त गरीब की स्थिति इससे उल्टी होगी। [illegible] धनवान महाजन कड़े-कंठी पहन कर जंगल में जावे और सामने, कं[illegible] पर लाठी लिये एक जाट को देखें तो ?

'सब भाग खड़े होंगे !'

बस, आखिर कड़े-कंठी को लजाया न ! इसीलिए कहना पड़[illegible] है कि असली सुख चाँदी-सोने में नहीं है।

एक मनुष्य एक पैर से लकड़ी के सहारे चलता हो और दू[illegible] स्वतंत्रता के साथ बिना सहारे चलता हो तो आपकी निगाह में कौ[illegible] अच्छा जँचेगा ?

'बिना सहारे चलनेवाला !'

ठीक है, क्योंकि स्वतंत्रता में जितना सुख है परतंत्रता में [illegible] है। [illegible] और [illegible] पर [illegible] अपने सुख और [illegible] [illegible] है पर वास्तव में वह सुख सुख नहीं है। गाड़ि[illegible] [illegible] है

सकता है ? यही संसार की व्याकुलता का कारण है। इसी तृष्णा से
दुःख शोक और संताप की उत्पत्ति होती है।

ज्ञानी जन तृष्णा के पीछे नहीं दौड़ते। उन्होंने समझ लिया है
कि अगर कोई अपनी परछाई पकड़ सकता है तो तृष्णा की पूर्ति कर
सकता है। मगर अपनी परछाई के पीछे कोई कितना ही दौड़े, वह
आगे आगे दौड़ती रहेगी, पकड़ में नहीं आ सकेगी। इसी प्रकार
तृष्णा की पूर्ति के लिए कोई कितना ही उपाय करे मगर वह पूरी नहीं
होगी। ज्यों-ज्यों परछाई के पीछे दौड़ने का प्रयत्न किया जाता है, त्यों
त्यों वह आगे बढ़ती जाती। मगर मनुष्य जब उससे विमुख हो जा
है, तब वह लौट कर उसका पीछा करने लगती है। इस प्रका
परछाई के पीछे दौड़ कर अपनी शक्ति का नाश करना व्यर्थ है औ
तृष्णा की पूर्ति करने के लिए मुसीबत उठाना भी वृथा है।

ज्ञानी पुरुष जानते हैं कि मुझे जो कुछ प्राप्त है वह भी मे
नहीं तो दूसरी वस्तु की आकांक्षा क्यों करूँ ? ज्ञानवान पु
अज्ञानियों की तरह चिन्ता में घुल-घुल नहीं मरते। ज्ञानी जान
हैं कि मेरा विवाह हुआ है पर मेरी स्त्री मुझ से भिन्न रही है, मैं
के नष्ट होने पर चिन्ता नहीं करता और प्राप्त होने पर खुशी भी न
मनाता। ज्ञान अपने शरीर पर शासन कर सकता है।

यहाँ बैठे हुए कई भाइयों के बाल सफेद हो गये हैं। वे
काले नहीं कर सकते। काला करना उनके हाथ की बात नहीं है।
वृद्ध शरीर के गुलाम बने हुए हैं यह अपनी परतन्त्रता प्रकट क
परन्तु जो अपने शरीर को वश में कर लेता है, वह शरीर में
वश में काम कर सकता है अमेरिका की एक ८८ वर्ष की
वनिता के सिर पर एक भी बाल सफेद नहीं है, चेहरे पर झुर्रियाँ

दुःख आधिदैविक दुःख गिने गये हैं । इन सब के कारण अप्रि
होने पर चिन्ता करना और हर्ष मानना वृथा है । दुःख से बचने
उपाय उदासीन वृत्ति है ।

संसार सम्बन्धी लालसाओं को बढ़ाना दुःख है और लालसा
पर विजय प्राप्त करना सुख है ।

मैं हमेशा आपको दुःख काटने का उपदेश देता हूँ । वास्त
दुःख कैसे कट सकता है ? आपने दुःख दूर करने के अनेक उ
किये हैं, अब भी आप दुःखों को निवारण करने के लिए अनेक य
कर रहे हैं, पर दुःख कटते नहीं हैं । इससे यह भलीभाँति सिद्ध हो
है कि आपने दुःख काटने का ठीक ठीक उपाय नहीं समझा है । दु
के समूल नाश का उपाय शास्त्र बतलाता है ।

लेश्या कहिए या चित्त की तरंग कहिए, एक ही बात है । जि
कामों में लेश्या शुद्ध बनी रहे वही काम सुख देने वाले हैं । बुद्धिम
पुरुष को चाहिए कि वह अपने चित्त की तरंगों का—लेश्याओं का—
निरीक्षण करता रहे और उनकी शुद्धता पर पूर्ण लक्ष्य रक्खे
लेश्याओं का स्वरूप समझने के लिये एक उपयोगी दृष्टान्त इस
प्रकार है:—

छ आदमी जंगल की ओर रवाना हुए । रास्ते में उन्हें भूख
लगी । उन्हें पीले-पीले फलों से लदा हुआ एक आम का वृक्ष दिखाई
दिया । वे आम के पास पहुँचे । उनमें से एक के पास कुल्हाड़ी थी ।
उसने कहा—'मित्रो ! इस वृक्ष में बहुत-से फल हैं । अभी इसे जड़
से काटकर गिराय देता हूँ । फिर आप लोग मन चाहे फल खाना
और अपनी भूख मिटाना ।

अपने गुरु की इज्जत घटानी चाहिए? जिस संघ में आप रहते हैं
छिन्न-भिन्न कर डालना योग्य कहलाएगा? नहीं। आपको याद है
राजगृही नगरी में व्यापारी कम्बल बेचने आये। राजा श्रेणिक ने
कम्बल न खरीदे पर भद्रा सेठानी ने सोलह खरीद लिये। यह कम्बल
साधारण नहीं थे। एक-एक कम्बल की कीमत सवा लाख रुपया थी
भद्रा को उन कम्बलों की आवश्यकता नहीं थी। फिर भी उसने
राजगृही—अपने नगर की प्रतिष्ठा रखने के लिए खरीदे। वह न
खरीदती तो व्यापारी सोचते—वाह! राजगृही भी कैसी नगरी है
जहाँ एक कम्बल का खरीददार भी न निकला। सेठानी ने कम्बल
खरीद कर कहा—सोलह ही लाये हो? बत्तीस ले आये होते तो
अच्छा था!

सेठानी भद्रा ने अपने नगर का मान रखने के लिए यह कहा
जिसमें वह रहती है उसकी बेइज्जती करना वह नहीं चाहती।

मित्रो! यहीं से धर्मलेश्या आरम्भ होती है। क्या आप ध्यान
पूर्वक सुन कर इन बातों को स्मरण रक्खेंगे?

चौथा पुरुष फिर बोला—भाई मेरी सम्मति तो यह है कि
टहनियाँ या पत्ते न तोड़ कर फल ही फल तोड़ लेने चाहिए। इसमें
वृक्ष की शोभा भी न बिगड़ेगी और अपना काम निकल जायगा।

पाँचवें मित्र ने कहा—तुम्हारा कहना इन सब से अच्छा है, प
मुझे तो इसमें भी कुछ भूल मालूम होती है। कच्चे फल तोड़ने
कोई फायदा नहीं है [illegible] पक [illegible] तो [illegible] काम आवेंगे
[illegible] फेंक देंगे तो [illegible] की दया न होगी
[illegible]

करनी चाहिए जिससे चित्त में आनन्द रहे। व्यर्थ व्यय को कम करके आप दीन-दुखियों की मदद कर सकते हैं, भूखों मरते गरीबों को जीवन-दान दे सकते हैं। देश और धर्म के उत्कर्ष में लगा सकते हैं।

मित्रो ! दूसरे की सहायता में व्यय करना, दूसरे के दुःख को अपना दुःख मानना और दूसरे के सुख को अपना सुख समझना मनुष्य का आवश्यक कर्त्तव्य है। ईश्वर से प्रार्थना करो कि आपकी प्रकृति ऐसी बन जाय। आपके हृदय में ऐसी सहृदयता और सहानुभूति उत्पन्न हो जाय।

> ऐसी मति हो जाय, दयामय ! ऐसी मति हो जाय।
> औरों के दुःख को दुःख समझूँ, सुख का करूँ उपाय।
> अपने दुःख सहूँ सहर्ष पर-दुःख न देखा जाय ॥दयामय०॥

एक व्यक्ति जब तक अपने ही सुख को सुख मानता रहेगा, उ तक उसमें दूसरे के दुःख को अपना दुःख मानने की संवेदना जाग न होगी, तब तक उसके जीवन का विकास नहीं हो सकता। उन जीवन का धरातल ऊँचा नहीं उठ सकता। अवतारों और तीर्थंक ने दूसरों के सुख को ही अपना सुख माना था। इसी कारण अपना चरम विकास करने में समर्थ हुए। जिस गरीब मनुष्य भावना में ऐसी विशालता आ जाती है वह राजा को भी डिगा सक है। पर जो अपने ही सुख को सुख मानता है, वह चाहे राजा ही न हो, शैतान या दुनिया का सत्यानाश करने वाला ही कहा जायगा.

किसी समय में एक राजा राज्य करता था। उसके पास बहुत विद्वान आते रहते थे। वे लोग राजा में जो दुर्गुण देखते उन्हें दूर

करने का उपदेश राजा को दिया करते थे। पर राजा किसी का कुछ मानता नहीं था। वह विद्वान् पण्डितों को अपने सुख में विघ्न डालने वाला समझता था। अगर कोई विद्वान् अधिक जोर देकर उपदेश देता तो राजा उसका अपमान करने में भी नहीं चूकता था। इस प्रकार किसी की बात पर कान न देने के कारण राजा के दुर्व्यसन बढ़ते गये।

एक रोज राजा अपने साथियों के साथ, घोड़े पर सवार होकर शिकार खेलने के लिए जंगल में गया। वहाँ अपना शिकार हाथ से जाते देख उसने शिकार का पीछा किया। राजा बहुत दूर जा पहुँचा। साथी बिछुड़ गये। पर शिकार हाथ न आया।

मनुष्य भले ही अपना कुव्यसन न छोड़े, मगर प्रकृति उसे चेतावनी जरूर देती रहती है। यही बात यहाँ हुई। बहुत दूर चले जाने पर राजा रास्ता भूल गया। वह बुरी तरह थक गया। विश्राम के लिए किसी पेड़ के नीचे ठहरा। इतने में जबर्दस्त आँधी उठी और पानी की वर्षा होने लगी। थोड़ी ही देर में बिजली चमकने लगी, मेघ घोर गर्जना करके मूसलधार पानी बरसाने लगे और ओलों की बौछार होने लगी। राजा बड़ी विपदा में फँस गया। उसने इसी जंगल में न जाने कितने निरपराध पशुओं को अपनी गोली का निशाना बनाया था। आज वह स्वयं प्रकृति की गोलियों—ओलों—का निशाना बना हुआ था। राजा ओलों से बचने के लिए वृक्ष के नीचे घुसा जाता था पर वृक्ष ओलों से उसकी रक्षा न कर सका। घोड़ा थका हुआ था ही। ओलों की मार से वह और हाँफ गया और अन्त में उसने भी राजा का साथ छोड़ दिया। अब राजा को एक भी सहायक नजर नहीं आता था। उसके महलों में सैकड़ों दास

और दासियों का जमघट था, मगर आज इस मुसीबत के समय कोई खोज-खबर लेने वाला भी नसीब नहीं था।

विपत्ति हमेशा नहीं रहती। कभी न कभी वह टल ही जाती है। इस नियम के अनुसार पानी का बरसना, मेघों का गरजना और हवा का चलना बन्द हो गया। धीरे-धीरे बादल भी फटने लगे। तब राजा के जी में जी आया। उसने चारों तरफ दृष्टि दौड़ाई तो जल ही जल दिखाई दिया। पर दूर की तरफ नजर दौड़ाने पर कुछ का कुछ प्रकाश दिखाई दिया।

प्रकाश देखकर राजा के हृदय में तसल्ली बँधी। उसने सोचा—वहाँ कोई मनुष्य अवश्य होगा। वहाँ चलना चाहिए। राजा गिरता-पड़ता फिसलता हुआ धीरे धीरे वह अग्नि के प्रकाश की तरफ बढ़ा। वह ज्यों-ज्यों आगे बढ़ता जाता था, एक झोंपड़ी उसे मालूम होती जाती थी। आखिर राजा झोंपड़ी के द्वार पर जा पहुँचा।

राजा शिकारी के वेष में झोंपड़ी के द्वार पर खड़ा हुआ। झोंपड़ी में एक किसान रहता था। राजा को देखते ही उसने कहा—'आओ भाई, अन्दर आ जाओ।'

अहा! ऐसी घोर विपदा के समय यह स्नेह-पूर्ण 'भाई' संबोधन सुनकर राजा को कितना हर्ष हुआ होगा!

किसान राजा को शिकारी ही समझे था। उसके कपड़े पानी ... देखकर किसान ने कहा—ओह! तू तो पानी में लथ-पथ हो रहा है ... [illegible] ... होगा।

[illegible]

एक गरीब की प्रेम-पूर्ण सेवा ने सारे राज्य को सुधार दि
राजा उस किसान को अपना आदर्श और महा-पुरुष मानने ल
अब भी उसे किसान का स्मरण हो आता, तभी वह किसान के च
में अपना सिर झुका देता।

मित्रो! दूसरे के सुख में अपना सुख मानने वाले का
कितना होता है, यह इस कहानी से समझो। वास्तव में वह
सुख का अधिकारी होता है जो दूसरों के सुख को ही अपना
मानता है।

समस्त प्राणियों में ईश्वर विराजमान है। प्राणियों
करना ईश्वर की सेवा है। जिस मनुष्य में इतना ज्ञान नहीं
से भी गया-बीता है। अपने मनुष्यत्व को सार्थक करने के
सब प्राणियों की सेवा करता है, वह देवत्व को प्राप्त कर
और असीम कल्याण का भाजन बनता है। वह 'शिव
सर्वे स्वरूप का ज्ञाता है।

भीनासर
४—१—३० }

होता है। कान पर हाथ फेरने वाला कहता है—हाथी सूप (छाजे के समान होता है। पेट टटोलने वाला कहता है—हाथी कोठी समान होता है और पूंछ पकड़ने वाला कहता है—हाथी रस्से समान होता है।

इन सब का कहना एक-एक अंश में सत्य अवश्य है, अपनी-अपनी धुन में जब वे एक दूसरे की बात काटने लगते हैं, उन सब का कथन असत्य हो जाता है। हाथी का पैर पकड़ने की दृष्टि से सूंड पकड़ने वाले का और सूंड पकड़ने वाले की दृष्टि पैर पकड़ने वाले का कथन मिथ्या है। इसी प्रकार प्रत्येक दूसरे अन्धे को झूठा कहकर परस्पर ... लेकिन हाथी को पूर्ण रूप से देखने वाला ... कि उन्होंने सत्य के एक-एक अंश को ही ग्रहण किया है और अंशों का अपलाप कर दिया है। कदाचित् वे लोग अपने मत सत्य समझते हुए दूसरों को भी सच्चा समझें तो उन्हें मिथ्या शिकार नहीं होना पड़े। उनकी सचाई, दूसरे की अपेक्षा को सम उसे सच मानने में है और दूसरे को झूठ कहने से वे स्वयं झूठे जाते हैं। अगर सब अन्धे अपनी अपनी एकदेशीय कल्पना को करके हाथी का स्वरूप समझें तो उन्हें हाथी की सर्वाङ्ग-स आकृति का भान हो सकता है परन्तु अज्ञान के कारण वे आपस एक-दूसरे को झूठा कह कर स्वयं झूठ के पात्र बनते हैं।

धर्मों के विषय में भी यही हाल है। सत्य एक है, अखण्ड और व्यापक है। समस्त ... पन्थ या सम्प्रदाय उस सत ... करने ... परन्तु ज्ञान की अपूर्णता के ... सत्य को ... सत्य का एक अंश ही उन्हें उपलब्ध है ... एक अंश को ही सम्पूर्ण सत्य मान लेने से ...

जैन दर्शन में माना हुआ स्याद्वाद सिद्धान्त धार्मिक विरोध को समाप्त करने का बहुत ही श्रेष्ठ उपाय है। वह दूसरों के दृष्टिकोण को उदारतापूर्वक समझने, ग्रहण करने और सत्य का अंश ग्रहण करने की शिक्षा देता है। स्याद्वाद ऐसी मशीन है, जिसमें सत्य के खंड खंड मिलकर अखंड अर्थात् परिपूर्ण सत्य ढाला जाता है। स्याद्वाद का सम्यक् प्रकार से उपयोग किया जाय तो मिथ्या प्रतीत होने वाला दृष्टिकोण भी सत्य प्रतीत होने लगता है। जगत् के धार्मिक और दार्शनिक दुराग्रहों को समाप्त करने के लिए स्याद्वाद के समान और कोई उपाय नहीं है।

असत्य का परित्याग करना और सत्य को ग्रहण करना बुद्धिमान पुरुष का कर्त्तव्य है। न्यायाधीश के सामने वादी और प्रतिवादी दोनों अपना-अपना पक्ष उपस्थित करके उसे प्रमाणित करने का प्रयत्न करते हैं, पर बुद्धिमान् न्यायाधीश अपना दिमाग लगा कर प्रमाणों की परीक्षा करके सत्य-असत्य का निर्णय करता है। धर्म के विषय में भी यही बात होनी चाहिए। जगत् के प्रपञ्चों से बचने के लिए और शान्तिलाभ के लिए धर्म की उपासना की जाती है। इसलिए धर्म को अशान्ति का कारण नहीं बना डालना चाहिए और उसमें प्रपञ्चों को ही स्थान मिलना चाहिए।

जैन दर्शन का तत्त्व क्या है? राग-द्वेष को पूर्ण रूप से जीत कर जिन महापुरुषों ने धर्म की स्थापना की है उन्हीं का धर्म जैनधर्म कहलाता है। राग द्वेष पर पूर्ण विजय प्राप्त कर लेने पर अज्ञान नहीं टिक सकता। अतएव वीतराग और सर्वज्ञ द्वारा प्रतिपादित तत्त्व ही जैनधर्म है।

जगत में असत्य भाषण के कारणों की जांच की जाय तो मालूम होगा कि असत्य भाषण के मूल कारण दो हैं—अज्ञान और

तात्पर्य यह है कि एक ही मनुष्य भिन्न भिन्न अपेक्षाओं से पितापन, पुत्रपन, मामापन, आदि अनेक गुण रहते हैं। ऐसी स्थिति में जो मनुष्य एक ही गुणों को लेकर ज़िद करने बैठ जाता है, वह दूसरों गुणों की अपेक्षा से झूठा पड़ जाता है। जो मनुष्य अपने आपको एकान्त रूप से पिता ही समझता है वह अपने पिता की अपेक्षा भी पिता हो जाएगा और जो एकान्ततः पुत्र बनता है वह अपने पुत्र का भी पुत्र कहलाने लगेगा। इस प्रकार एकान्त दृष्टि मिथ्या होती है।

एक उदाहरण और लीजिए। आप लोग मेरे सामने बैठे हुए हैं। मेरी अपेक्षा आप पूर्व दिशा में बैठे हैं और आपकी अपेक्षा मैं पश्चिम की तरफ बैठा हूँ। मगर जो सज्जन मेरे पीछे बैठे हैं उनकी अपेक्षा मैं पूर्व में और आपके पीछे बैठे हुए सज्जनों की अपेक्षा आप पश्चिम में बैठे हुए हैं। ऐसी स्थिति में आप से पूछा जाय कि आप किस दशा में बैठे हैं? तो आपका उत्तर अपेक्षा का ध्यान रख कर होना चाहिए। आप कहेंगे—'किसी अपेक्षा से हम पूर्व में बैठे हैं, किसी अपेक्षा से पश्चिम में बैठे हैं।' अगर आपने अपेक्षा का ध्यान रख कर उत्तर दिया तो आपका उत्तर सच्चा होगा। अगर आप हठ पकड़ कर बैठ जाएँगे और कहेंगे कि हम तो पूर्व में ही बैठे हैं तो आप का कथन मिथ्या हो जायगा। इस प्रकार सापेक्ष दृष्टि सत्य होती है और निरपेक्ष दृष्टि मिथ्या होता है। अपेक्षा का ध्यान रख कर कथन करना ही स्याद्वाद है।

[illegible] अमृत सवार स[illegible]
[illegible] है [illegible] किसी
[illegible] समझा जा सकता।

एक आदमी कहता है—मैं ब्राह्मण हूँ, वह शूद्र है। पर क्या यह बात एकान्त सिद्ध है?

नहीं!

इसलिए कि मनुष्य के ऊपर न तो ब्राह्मणत्व की कोई छाप लगी है और शूद्रत्व की ही। जिस प्रकार ब्राह्मण अपने अंग-प्रत्यंग से व्यावहारिक काम करता है उसी प्रकार शूद्र भी काम करता है। फिर दोनों में अन्तर क्या है? दोनों में अगर कोई अन्तर हो सकता है तो यही कि ब्राह्मण में ब्राह्मण सम्बन्धी पठन-पाठन आदि लक्षण विद्यमान हैं और शूद्र में सेवा करना आदि शूद्र के लक्षण होते हैं। मगर कई-एक ब्राह्मण सेवाधर्म अङ्गीकार किये हुए हैं और सेवा करना शूद्र का धर्म है। जब कोई ब्राह्मण, शूद्र का काम अपनाता है तो क्या वह कर्म की अपेक्षा से शूद्र नहीं कहलाएगा? इसी प्रकार ब्राह्मणज्ञान आदि कोई ब्राह्मणोचित गुण किसी शूद्र में विद्यमान हो तो क्या वह उस अपेक्षा से ब्राह्मण नहीं कहलाएगा?

अपेक्षा से ब्राह्मण और अपेक्षा से शूद्र की कल्पना की जाती है। इसके उदाहरण महाभारत में भी मिलते हैं। कौन मनुष्य किस जाति में गिना जाना चाहिए, इसका आधार गुण-कर्म पर था। प्राचीन काल में आजकल की तरह एकांगिता नहीं थी। गुण कर्म के अनुसार ही वर्णव्यवस्था की गई थी। उस समय न तो ब्राह्मणत्व का ठेका किसी के पास था और न शूद्रत्व का ही। जो ब्राह्मणोचित कर्म करता है वह ब्राह्मण कहलाता था और जो शूद्र-कर्म करता था वह शूद्र कहलाता था। गीता में स्पष्ट कहा है—

ईरान के बादशाह ने अपनी सेना भेजकर बाबर की मदद की। बाबर फिर भारत पर चढ़ आया और उसने अपनी विजय का झंडा यहाँ फहरा दिया।

तात्पर्य यह है कि गधे पर हाथी का बोझ लादना मूर्खता है।

न हि वारणपर्याणं वोढुं शक्तो वनायुजः।

अर्थात् हाथी का पलान गधा नहीं सहार सकता।

जैसे हाथी का बोझ गधे पर लादना मूर्खता है, उसी प्रकार गधे का काम हाथी से लेना भी बेवकूफी है। जो काम जिसके योग्य हो वही काम उस को सौंपना चाहिए। 'योग्यं योग्येन योजयेत्' चातुर्वर्ण्य की स्थापना में यही भावना थी। इसमें बाप, बेटे का और बेटा बाप का लिहाज़ नहीं करता था। आज वर्णव्यवस्था की गड़बड़ के कारण भारतवर्ष की बड़ी हानि हो रही है।

चातुर्वर्ण्य समाज का विराट रूप है। इसमें क्षमा और विवेक के सागर ब्राह्मण मस्तक माने गये हैं। पराक्रमी वीर क्षत्रिय बाहु माने गये हैं। उदार दानी वैश्य पेट माने गये हैं और सेवा-भक्ति करने वाले शूद्र पैर माने गये हैं।

मित्रो! शरीर में प्रत्येक अङ्ग अपने उचित स्थान पर ही शोभा पाता है। पैर की जगह पैर की शोभा है और मस्तक की जगह मस्तक की। अगर पैर हाथ बन जाए और हाथ पैर बन जाएँ अर्थात् पैरों का काम हाथों से और हाथों का काम पैरों से लिया जाय, इसी प्रकार मस्तक का काम भुजाओं से और भुजाओं का काम मस्तक से लिया जाय तो काम चल सकता है? नहीं, अपने अपने

स्थान पर ही सब की शोभा है। फिर भी सब अङ्गों के स्वास्थ्य का ध्यान रखना चाहिए। अलबत्ता विचार का स्थान है। अगर वह अपना काम छोड़ दे तो शरीर निकम्मा बन जाता है। अगर हाथ यह कहे कि मैं पेट के लिये श्रम क्यों करूं ? तो नतीजा क्या होगा ? पेट के साथ साथ हाथ की कमजोरी आ जायगी। इस प्रकार आप विचार कीजिए तो विदित होगा कि एक को दूसरे की अनिवार्य आवश्यकता है, अतएव सभी को सब का ध्यान रखना चाहिए। अगर आप पैर की परवाह नहीं करेंगे तो पंगु कौन बनेगा ? आप स्वयं ही या और कोई ?

जो बात शरीर के विषय में है वही समाज के विषय में समझनी चाहिए। ब्राह्मण की जगह ब्राह्मण, क्षत्रिय की जगह क्षत्रिय, वैश्य की जगह वैश्य और शूद्र की जगह शूद्र रहे, यही उचित एवं शोभास्पद है।

ब्राह्मणों का काम समाज को ज्ञान देना, क्षत्रियों का काम रक्षा करना, वैश्यों का काम धनसंग्रह करना और शूद्रों का काम सेवा बजाना था। पर आज उल्टी गङ्गा बह रही है। आज बहुत-से ब्राह्मण शूद्रों का काम करते हैं। आज 'पीर बवर्ची भिश्ती खर' की कहावत चरितार्थ हो रही है। सेठजी के घर पानी भरने वाला ब्राह्मण, रसोई बनाने वाला ब्राह्मण और कहाँ तक कहा जाय सब काम करने वाला ब्राह्मण ! हाय, यह कैसा विपरीत दशा है !

प्राचीन काल के ब्राह्मण ब्रह्मचर्य पालन करते [illegible] जीवन को ज्ञान सार [illegible] सन्तोषमय जीवन व्यतीत करते थे और समाज को सद्ज्ञान का उपदेश देते थे। [illegible] इसीलिए वे समाज के गुरु और पूजनीय माने जाते थे।

राजा—मगर वनराज पैदा करने के लिए ऐसी-वैसी माता से काम नहीं चलेगा। उसके लिए कैसी माता चाहिए, सो मैं बताता हूँ। यह वनराज की माता की कहानी है। एक बार मैं रानी के महल में गया। उस समय वनराज एक छह महीने का बच्चा था। मैं रानी के साथ कुछ विनोद करने लगा। रानी ने मना करते कहा—आप इस समय ऐसा न कीजिए। मैं पर-पुरुषों के सामने अपनी लाज खराब नहीं कराना चाहती।

मैंने रानी से पूछा—यहाँ मेरे सिवाय और कौन पुरुष है?

रानी ने पालने की ओर इशारा करके कहा—यह सो रहा है न [illegible]

मैंने कहा—'बावरी रानी! एक छह महीने के बच्चे का [illegible] ख़याल करती है?' और मैंने उसके कन्धों के ऊपर अपने [illegible] रख दिये।

वनराज ने उसी समय अपना मुँह फेर लिया। रानी ने [illegible] देखा आपने? आप जिसे अबोध बालक समझते हैं उसने मुँह [illegible] लिया! हाय! पुरुष के आगे मेरी इज्जत चली गई! आपने [illegible] पुरुष नहीं, मांस का पिंड समझा और मुझे बेआबरू कर दिया!

दूसरे दिन वनराज की माता ने विष-पान करके प्राण [illegible] [illegible]।

[illegible] बालकुशला मिल सकती [illegible]

[illegible]

[illegible]

उन दिनों परशुराम धनुर्वेद के आचार्य माने जाते थे। पर उनका प्रण था--सिवा ब्राह्मण के यह विद्या किसी और को नहीं सिखाऊँगा।

कर्ण को परशुराम के प्रण का पता था। वह ब्राह्मण का रूप धारण करके परशुराम के आश्रम में पहुँचा और उनसे धनुर्विद्या सिखाने की प्रार्थना की।

परशुराम ने उसका परिचय पूछा और उसने अपने को ब्राह्मण बतला दिया। अन्त में परशुराम ने उसकी प्रार्थना अंगीकार कर ली और कर्ण आश्रम में रहने लगा।

कर्ण परशुराम की अनन्य-भाव से सेवा करता था। परशुराम उसकी सेवा पर मुग्ध हो गया और उसे दिल खोल कर सिखाने लगा। कुछ दिनों बाद कर्ण ने सेवा और अधिक करना आरम्भ कर दिया। पर उसका असर उल्टा हुआ। सेवा की अधिकता ने परशुराम के हृदय में शङ्का उत्पन्न कर दी। वह सोचने लगा--ब्राह्मण-कुमार इतनी कठोर सेवा नहीं कर सकता। कदाचित् यह ब्राह्मणेतर न हो!

एक दिन की बात है कि परशुराम कर्ण की गोद में सिर रखकर सो रहे थे। एक कीड़े ने कर्ण की जांघ पर ऐसा काटा कि खून बहने लगा। जांघ इधर-उधर करने से गुरुजी की निद्रा भंग होने का उसे भय था। गुरुभक्त कर्ण ने अपने कष्ट की परवाह न करते हुए धैर्य रक्खा और निश्चल बैठा रहा।

[illegible] बहता हुआ [illegible] परशुराम के शरीर को छू गया। खून

काँपती थी। भारत उसपर अभिमान करता था। प्रजा उन्हें अपना रक्षक मानती थी और बड़े-बड़े वीर उनके आदेश की प्रतीक्षा करते थे।

जिनके पूर्वजों ने अपने देश की रक्षा की, वे आज अपने प्राणों की रक्षा के लिए दूसरों का मुँह ताकते हैं! जिनके पूर्वज अपनी जीवन-संगिनी तलवार के बल पर निर्भय सिंह की भाँति विचरते थे, वे आज अपनी बनियाई के लिए दुनिया में बदनाम हो रहे हैं! जिनके पूर्वज अन्याय और अत्याचार का प्रतिकार करने के लिए हँसते-हँसते सिर कटवा देते थे, वे आज अपनी जिन्दगी गुजारने के लिए अन्याय और अत्याचार के आगे माथा टेकने में लज्जित नहीं होते! जिनके पूर्वज किसी समय देश के आधार थे; वही आज भार बन रहे हों तो कितने परिताप की बात है!

मित्रो! अर्थ को ही अपने जीवन की क्षुद्र सीमा मत बनाओ। अर्थ के घेरे से बाहर निकलो और देखो, तुम्हारा इतिहास कितना उज्ज्वल है, कितना तेजस्वी है, कितना वीरता-पूर्ण है। इतिहास तुम्हारे पूर्वजों की यशोगाथाओं से भरा पड़ा है। उसका प्रत्येक पृष्ठ उनके उद्दाम शौर्य का साक्षी है। तुम साधारण पुरुष नहीं हो। तुम्हारी रग रग में क्षत्रिय-रुधिर चक्कर काट रहा है। तुम में कोई राठौर, कोई सीसोदिया और कोई चौहान है। कायरता की मनोवृत्ति त्यागो। अपनी शक्ति को समझो। निर्भय बनो।

तुम उस परम पुरुष के समान हो जिसके 'महावीर' नाम में ही शूरवीरता भरी हुई है और प्रचण्ड पराक्रम का प्रतीक 'सिंह' जिसका निशान था। तुम उस 'जैन धर्म' के आराधक हो जिसके नाम से ही विजय का—जीत का—संदेश सुनाई दे रहा है। जिसका आराध्य

सिंह में अर्जुन महावीर हैं; जिसका धर्म विजयिनी शक्ति का स्रोत है, उसे कायरता शोभा नहीं देती। उसे वीर होना चाहिए।

संयम धारण करके काम, क्रोध आदि आन्तरिक शत्रुओं पर विजय प्राप्त करना भी वीरता का ही कार्य है, परन्तु समय का विचार अवश्य कर लेना चाहिए। जिस समय सांसारिक जिम्मेवारी आ पड़े उसी समय वैराग्य उत्पन्न हो तो समझना चाहिए कि यह खोटा वैराग्य है। जिस समय महाभारत युद्ध की तैयारी हो रही थी उस समय अर्जुन को वैराग्य चढ़ा। तब कृष्ण ने अर्जुन को फटकारा—

> कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम्।
> अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन ! ॥

ऐ अर्जुन ! ऐसे विषम समय में नीच पुरुषों द्वारा अभिनन्दित, स्वर्ग-प्राप्ति को रोकने वाला और अपकीर्ति फैलाने वाला यह अज्ञान तुम्हें कहाँ से आगया ? इस समय का वैराग्य नरक में डालने वाला है।

भाइयो ! इस प्रकार की क्षत्रियों को शोभा देने वाली वीरता पैदा करने के लिए आत्मा में पवित्रता होनी चाहिए जिस क्षत्रिय के हृदय में दुर्व्यसनों ने अड्डा बना लिया हो उसमें ऐसी वीरता नहीं आ सकती. वह महाकायर होता है। जो स्वयं विषयों का दास है वह संसार पर शासन कैसे करेगा ?

जिसमें किसी प्रकार का व्यसन लगा हुआ है वह स्त्री-लंपट हुए बिना नहीं रह सकता जो स्त्री-लंपट होगा वह अपने वीर्य की रक्षा नहीं कर सकता और जो वीर्यहीन होगा उसमें बल कहाँ ? बल के बिना संसार में वह अपना प्रभाव कैसे जमा सकता है ?

भगवान् ऋषभदेव ने वीर्य की रक्षा की थी, तभी तो वे संसार के पूजनीय हुए। आज न केवल जैन बल्कि वैष्णव लोग भी उन्हें अपना देव मानते और पूजते हैं। संसार वीर्यशालियों की पूजा करता है। आप अपने पूर्वजों के समान वीर्यशाली बनो और अपने धर्म को सम्भालो।

यही बात मुझे वैश्य भाइयों से कहनी है। वैश्य देश के पेट के समान हैं। पेट आहार को स्थान अवश्य देता है परन्तु उस आहार का उपभोग समस्त शरीर करता है। वह सिर्फ अपने ही लिए आहार जमा नहीं करता। वैश्य देश की आर्थिक-दशा का केन्द्र है। देश की आर्थिक-स्थिति को सुधारना उनका कर्त्तव्य है। वैश्यों को आनन्द श्रावक का आदर्श अपने सामने रखना चाहिए और स्वार्थमय [illegible] का त्याग कर जन कल्याण की भावना को हृदय में स्थान देना चाहिए।

शूद्रों की दशा आपने बदतर बना दी है। इसी कारण देश आज पंगु बन गया है। अगर आप अपनी और अपने देश की सर्वाङ्गीण समुन्नति चाहते हैं तो उन्हें ऊँचा उठाइये। उन सेवकों को प्रेम की दृष्टि से देखिए। उन्हें अपने मनुष्यत्व का भान होने दीजिए। उन्हें समर्थ बनाइये।

इस प्रकार जैसे वर्ण व्यवस्था गुण–कर्म की अपेक्षा से है, उसी प्रकार संसार की समस्त वस्तुएँ अपेक्षा पर ही स्थित हैं। इस [illegible] अनेकान्तवाद का स्याद्वाद [illegible] है।

[illegible] का मूल एकान्तवाद है। [illegible] का समर्थन का [illegible] का अनेकान्त [illegible] उस [illegible] का अन्त [illegible]

विषय में पृथक्करण करना चाहा तो आप को विदित हो जाय
संसार में जो अगणित पदार्थराशि विद्यमान है उसमें नाशवान कौ
सी और अविनश्वर कौन-सी है ? अविनश्वर के साथ संबंध रख
उस पर विश्वास रखना सुखदाता है और नाशवान् से नाता जो
दुःखदाई है। कहा है—

जब लगी आतम-तत्त्व चिन्त्यो नहीं, त्यों लगी साधना सर्व झूठी।

जब तक जड़-चेतन का विवेक नहीं होता तब तक कोई क
सिद्ध नहीं हो सकता। जड़-चेतन का विवेक हो जाना 'सम्यग
है। भगवती सूत्र में कहा है—

'जिस मनुष्य को जड़-चेतन का ज्ञान नहीं हुआ, फिर
कहता है कि मैं त्यागी हूँ, समझना चाहिए उसका खयाल गलत
विवेक के बिना सब क्रियाएँ निष्फल-सी हैं। भौंरे के द्वारा लक
पर 'क' अक्षर खुद भी गया तो उसे उससे क्या लाभ है ? अगर कु
लाभ है तो 'क' अक्षर जानने वाले को। भौंरे के लिए तो वह ग
ही है।'

विवेक के बिना की गई क्रिया कदाचित् अच्छी मन जाय
तो भी उसे अज्ञान ही समझना चाहिए।

[illegible] विवेक के साथ वैराग्य की मात्रा भी हो
[illegible] सकान तथा [illegible]
[illegible] वैराग्य कहलाता है।

[illegible] वैराग्य साथ में ही हो सक
[illegible] कैसे हो सकता है ? पर वास्तव में [illegible]

डरते हैं ? इस अन्तर का कारण यही है कि वह शरीर को नाश
मानता था और भोगविलासों से विरक्त था। पर आप इसमें
समझे हुए हैं।

याद रखिए, शुद्ध विवेक के बिना आप कल्याण-मार्ग पर
नहीं बढ़ सकते। विवेक कल्याण-प्राप्ति की पहली शर्त है।

आपने पत्नी का पाणिग्रहण धर्म-पालन के लिए किया है।
प्रकार स्त्री ने भी आपको। जो नर या नारी इस उद्देश्य को
कर खान-पान और भोग विलास में ही अपने कर्त्तव्य की
समझते हैं वे धर्म के पति-पत्नी नहीं वरन पाप के पति-पत्नी हैं

आज ऐसे धर्म के जोड़े बहुत कम नजर आते हैं। आ
तो यह दशा है कि जो ज्यादा गहने पहनाता है वही अच्छा
माना जाता है। विपत्ति आने पर जो पति, अपनी पत्नी से गहने
लेता है, उसे उसकी पत्नी राक्षसस्त्या समझने लगती है। इसका
यही न निकला कि पति पति नहीं किन्तु जेवर पति है ?

आप बीकानेर नरेश के संबंधी हैं, अतएव आपसे यह कह देना उचित है कि आप लोगों पर इन रोगों की चिकित्सा का बड़ा भारी उत्तरदायित्व है। अगर लोग धर्म के कानून को न मानें तो आप लोगों को चाहिए कि राजकीय कानून बना कर इन रोगों का मुंह काला करें। बालविवाह और वृद्धविवाह इन रोगों में प्रधान हैं। इन रोगों की बदौलत अन्य बहुत से रोग उत्पन्न होते हैं। इनसे आपकी प्रजा का घोर पतन हो रहा है। आपके राज्य की शोभा वीर प्रजा से है, न कि निर्बल प्रजा से।*

महाराज हरिश्चन्द्र का धर्म-मर्यादा का पालन कौन नहीं जानता? जिस समय राजा हरिश्चन्द्र, महारानी तारा और कुमार रोहिताश्व राज्य त्याग कर जाते हैं, उस समय समस्त नर-नारियाँ आंसू बहाती हैं। स्त्रियाँ रानी से कहती हैं—महारानीजी, आप कहाँ पधारती हैं? आप हमारे घर में टिकिये। यह आप ही का घर है।

महारानी उत्तर देती हैं—'बहिनो! आपके आँसू, आँसू नहीं, वरन मेरे धर्म का सत्कार है। यह आँसू मेरे पतिव्रत धर्म का अभिषेक हैं। अगर मैं राजसी ठाठ के साथ राजमहल में विराजी रहती तो मेरे साथ आपकी इतनी सहानुभूति न होती। बहिनो! यदि आप मेरे प्रति सच्ची सहानुभूति रखती हैं तो आप भी अपने घरमें सच्चे धर्म की स्थापना कीजिए।'

मित्रो! आपने महारानी तारा के वचन सुने? वह धर्म की रक्षा के लिए कितने हर्ष के साथ राजपाट त्याग कर रही हैं? इसे

* बीकानेर राज्य में बाल-विवाह और वृद्ध-विवाह के विरुद्ध राजकीय कानून बन गया है। पूज्यश्री के सदुपदेश का इसमें हाथ रहा है।

कहते हैं वैराग्य ! लाखों करोड़ों के आभूषण पहनने वाली महारानी तारा ने ठीकरों की तरह उन्हें उतार कर फेंक दिया और मनमें तनिक भी मलीनता न आने दी। आप सामायिक करते समय गहने तो उतारते हैं पर कभी दो घड़ी के लिए अभिमान भी उतारते हैं? अगर नहीं, तो आप वैराग्य का अर्थ कैसे समझ सकते हैं?

हरिश्चन्द्र की समस्त प्रजा विश्वामित्र को कोस रही थी। हरिश्चन्द्र चाहते तो अपने एक ही इशारे से कुछ का कुछ कर सकते थे, मगर नहीं। उन्होंने प्रजा को आश्वासन दिया कि—घबराओ नहीं, धर्म का फल कटुक कभी नहीं हो सकता।

मित्रो ! आप लोग अपना 'पोजीशन' बनाया रखने के लिए झूठ, कपट, दगा, फाटका आदि करते हो मगर हरिश्चन्द्र की ओर देखो। उसके पीछे तमाम प्रजा की शक्ति है, फिर भी धर्म का आदर करने के लिए उसे राजपाट त्यागने में तनिक-सी भी हिचकिचाहट नहीं है। लोग दमड़ी-दमड़ी के लिए झूठ बोलने के लिए तैयार रहते हैं। उनमें ऐसी आस्तिकता कहाँ?

राजा हरिश्चन्द्र इस आस्तिकता के कारण ही हजारों वर्ष बीत जाने पर भी आज हम लोगों के मनोमन्दिर में जीवित हैं। उनकी पवित्र कथा हमें धर्म की ओर इंगित कर रही है, प्रेरित कर रही है।

पृथ्वीसिंहजी साहब ! यदि आपके नगर में महाराज हरिश्चन्द्र आवें तो आप उन्हें क्या भेट चढ़ाएँगे?

[illegible] महाराज !

[illegible] तैयार है ? उनके

ो देख कर। क्या इस सत्य धर्म प्रजा में प्रतिष्ठा नहीं होनी चाहिए?
न के लिए वीरता की आवश्यकता है और वीरता वीर्य-रक्षा से
ती है। आज प्रजा का वीर्य नष्ट हो रहा है। इसे रोक कर क्या
प प्रजा की रक्षा का श्रेय प्राप्त न करेंगे ?

प्यारे मित्रो ! यदि आप इन रोग-राक्षसों को पहचान गये हों
इन्हें—बालविवाह और वृद्धविवाह को—तिलांजलि दीजिए और
पने दूसरे भाइयों समझाइए। अगर वे न समझें तो सत्याग्रह
जिए। उनसे साफ शब्दों में कह दीजिए—अब हम ऐसे अत्याचार
गेज न होने देंगे।

धर्म के खातिर राजा हरिश्चन्द्र ने राज-पाट ही नहीं छोड़ा, पर
श्वामित्र को दक्षिणा चुकाने के लिए आप अपनी पत्नी सहित बिक
।। धर्म की रक्षा त्याग से होती है, तलवार से नहीं।

रामचन्द्रजी ने भी त्याग के द्वारा ही अपने धर्म की रक्षा की थी।
चाहते तो स्वयं राज्य के स्वामी बन सकते थे। सभी लोग उनके
। में थे, स्वयं भरत भी यही चाहते थे। पर रामचन्द्र राज्य के भूखे
ं थे। वे संसार को जलाने वाली पाप की अग्नि बुझाना चाहते थे।
हें मालूम हुआ कि मेरे ही घर में ऐसा द्वैत फैल गया है। एक ही
ता के पुत्रों में भी ऐसी भिन्नता समझी जाने लगी तब यह आग
सार में कितनी न फैल रही होगी ? उसे शान्त करने के लिए राम
राज्य का परित्याग किया। राम के इस त्याग से संसार सुधर
ा। अकेली कैकेयी क्या सुधरी, समग्र भारत रूपी कैकेयी का
गर होगया।

तलवार की शक्ति राक्षसों के लिए काम में आती है। दैव
महीने वाली प्रजा में प्रेम ही अपूर्व प्रभाव डाल देता है।

मित्रो ! यूरोप और अमेरिका आदि किसी भी देश का इतिहास ध्यान डालिए, पर हरिश्चन्द्र जैसे त्याग का दृष्टान्त आपको विश्व के इतिहास में नहीं मिलेगा।

ओह ! जिस समय रानी बाजार में बिकने के लिए खड़ी होती है, उस समय राजा तो मुंह से कुछ नहीं बोलते, पर रानी कहती है- 'लो, मैं बिक रही हूँ। जिसकी इच्छा हो मुझे दासी बनाने के लिए खरीद लो।'

धन्य है महारानी तारा का त्याग ! ऐसी पतिव्रता, धर्मपरायण रमणी आर्यावर्त्त को छोड़ कर और कहाँ उत्पन्न हो सकती है!

जिस समय रोहिताश्व का देहान्त होजाता है, उस समय महाराज हरिश्चन्द्र मरघट में अपने स्वामी-श्वपच-चांडाल-की आज्ञा के अनुसार कर (टैक्स) लेने के लिए बैठे थे। तारा रोहिताश्व को लेकर वहाँ आती है। राजा सामने आकर पैसा माँगता है। रानी कहती है—

'मुझसे पैसे माँगते हैं आप ?'

राजा—हाँ।

रानी—क्या आप मुझे भूल गये हैं ?

राजा—नहीं तारा, इस जीवन में तुम्हें कैसे भूल सकता हूँ।

रानी—तो आप मुझे इस कर से बरी नहीं कर सकते ?

राजा—तारा, यही करना होता तो राज्य क्यों त्यागता ? उस राज्य के लिए असत्य का आचरण न किया तो क्या एक टके के लिए ... गँवाना उचित होगा ?

मनुष्यता

प्रार्थना

जय-जय जगत शिरोमणि, हूं सेवक ने तूं धणी।
अब तैसीं गाढ़ी बनी, प्रभु आशा पूरो हम तणी॥

आत्मा की उन्नति के लिए विवेक की आवश्यकता है। वि
के बिना आत्मा की उन्नति नहीं हो सकती। यह बात कल भी
बतला दी थी, परन्तु शायद ही उस पर आपने फिर मनन किया हो
मनुष्य जिन विचारों का बार बार मनन किया करता है उ
में अच्छाई जाग्रत हो जाती है।

मित्रो ! जिस मनुष्य में विवेक नहीं होता, वह पशु से भी गयाबीता है। मैं आपको एक विवेक की बात कहता हूँ। उससे आप सहज ही समझ जाएँगे कि विवेक किसे कहा जाता है ?

कल्पना कीजिए, आप एक जंगल में खड़े हैं। वहाँ कई जानवर अपने से निर्बल पशुओं को चीर फाड़ कर खा रहे हैं। कई कई अपने विषैले स्वभाव से दूसरे प्राणियों को शिकार बना रहे हैं। बतलाइए, आप इन प्राणियों के समान हैं या जुदे हैं ?

'जुदे हैं !'

मित्रो ! इसी को अर्थात् वस्तु की विवेचना करने की शक्ति को विवेक कहते हैं। आपने उक्त प्रकृति वाले जानवरों की क्रिया को देख कर विवेचना कर ली कि—'मैं चीरफाड़ कर मांस खाने वाला सिंह, चीता आदि नहीं हूँ।' 'मैं विषमय दंशन करने वाला सर्प आदि नहीं हूँ। मैं पशु-जगत् से दूसरे जगत् का प्राणी—मनुष्य हूँ।' इस प्रकार आपने अपनी भिन्नता बतला दी, पर आपने यह भिन्नता नाम से बतलाई है या काम से ?

जो सूरत-शक्ल से मनुष्य हों पर लक्षणों में—कार्यों में पशु से भी गये-बीते हों, उन्हें क्या कहना चाहिए ? पशुओं से मनुष्य में क्या विशेषता होनी चाहिए, जिससे वह मनुष्य कहलाने का दावा कर सके ?

[illegible]

[illegible]

जानी हैं। इनके कारण मनुष्य, पशु से भिन्न-विशिष्ट नहीं बन सक
मनुष्य में धर्म की विशेषता है। जो मनुष्य धर्महीन है वह पशुओं के
समान है, क्योंकि उसमें ऐसी कोई बात नहीं पाई जाती जिससे
पशुओं से भिन्न श्रेणी का साबित हो सके।

कोई यह कह सकता है कि हम पकवान और मिठाइयाँ
हैं, इसलिए पशुओं से बड़े हैं। पर यह कहना ठीक नहीं है।
मक्खी शहद बनाती है और उसमें इतना अधिक मिठास रहता है
कोई मिठाई उसकी बराबरी नहीं कर सकती। इसके अतिरिक्त
ताकत देने वाले तथा दूसरे गुण इतने अधिक हैं कि खाने वाले
आश्चर्यचकित होना पड़ेगा।

अगर यह कहा जाय कि मिठाई बनाने में कारीगरी
पड़ती है, उसमें कला की आवश्यकता होती है, तो यह कथन
असत्य है। मधुमक्खी की कारीगरी देखकर बड़े बड़े वैज्ञा
अचम्भे में पड़ गये हैं, मधुमक्खी अपने छत्ते में शहद भरने के
ऐसे छेद बनाती है कि उन में रंचमात्र भी अन्तर दिखाई नहीं
कुशल कारीगर की बनाई हुई चूनड़ी के छिद्रों में अन्तर मि
चतुर मोती के बनाये हुए धुघरों में भी अन्तर पाया जा सक
परन्तु मधुमक्खी के बनाये हुए छेदों में अन्तर नजर नहीं आ
मधुमक्खी ने [illegible] विज्ञान किस शाला में सीखा ? उसने यह
कहाँ [illegible] है [illegible] बड़े बड़े वैज्ञानिकों को
[illegible] रहना है ?

[illegible]

भरने के लिए, क्योंकि बिना सहारे शहद टिक नहीं सकता अतएव, मोम लगाया है। किन-किन द्रव्यों का अंश लेकर इन्होंने मोम बनाया है? इन्हें किस रसायन शाला ने यह सिखाया है कि अमुक-अमुक द्रव्यों के सम्मिश्रण से मोम तैयार हो जाता है?

फिर शहद इकट्ठा करके मधु मक्खियों ने कमाल ही कर डाला है। अनेक प्रकार के पुष्पों में से रस निकाल-निकाल कर शहद क्या कम कारीगरी है? क्या साधारण-सा कौशल है? नहीं। परन्तु मधुमक्खियों ने इतना ही नहीं किया उन्होंने एक बड़ा काम और भी किया है। वह यह है कि छेदों के भीतर ज्यादा से ज्यादा शहद भरना और उन में कम से कम मोम लगाना। मित्रो! यह साधारण काम नहीं है। इस काम में उन्होंने अपने उत्कृष्ट कौशल की सीमा कर दी है। आप उसे ध्यानपूर्वक देखेंगे तो मधुमक्खियों का कौशल देख कर आपको दंग रह जाना पड़ेगा।

मधु-मक्खी में शहद उत्पन्न करने का सद्गुण है। अब आप अपनी ओर दृष्टि दौड़ाइये। सोचिए, आप में ऐसा कौन-सा सद्गुण है जो शहद की बराबरी कर सकता हो?

आपमें मिठाई बनाने की कला है पर वह पराधीन। मधुमक्खी में मधु तैयार करने की कला है। इतना होने पर भी अगर आप मूंछे मरोड़ कर अकड़ कर दिखाते फिरें और मनुष्य होने का अभिमान करें तो यह कहाँ तक उचित कहा जा सकता?

आपके पकवान शहद के सामने तुच्छ हैं [illegible] कारीगरी मक्खी [illegible] के आगे [illegible] है [illegible] सोचिए कि [illegible] मधुमक्खी से आगे बढ़ [illegible] हैं [illegible] हैं?

ऐसी स्थिति में स्वभावतः यह प्रश्न उपस्थित होता है कि मनुष्य मक्खी से बड़ा कैसे है ? इस प्रश्न पर गौर से विचार करना चाहिए। मक्खी यह कारीगरी आज से नहीं वरन् न जाने कब से कर रही है। फिर भी उसने अपने कार्य में कुछ भी परिवर्तन नहीं किया। वह जैसा पहले करती थी वैसा ही आज भी कर रही है। उसका यह विज्ञान जड़-विज्ञान है। इसके विपरीत मनुष्य अपने विज्ञान को बढ़ा सकता है। वह नित्य नवीनता ला सकता है। मनुष्य मधुमक्खी के ही नहीं, वरन् सारी सृष्टि के विज्ञान को अपने मस्तिष्क में भर सकता है। मस्तिष्क शक्ति की विशिष्टता के कारण मनुष्य मधुमक्खी से बड़ा है।

मनुष्य के विज्ञान ने घड़ी, रेल, बिजली, वायुयान, बेतार का तार आदि अनेक अन्वेषण किये हैं। मानवीय विज्ञान की बदौलत, अमेरिका प्रेसीडेन्ट के अमेरिका में होने वाले भाषण को भारत में बैठे अनायास ही सुन सकते हैं। यहाँ की प्रधान अभिनेत्री के नृत्य कला के हावभाव घर पर बैठे देख सकते हैं। इस विज्ञानशाला ने कइयों की आँखें खोल दी हैं। पहले अग्नि भोजन बनाने के काम आती थी और पानी का प्रायः पीने में प्रधान उपयोग होता था। पर अब इनकी सहायता से ऐसे ऐसे काम किए जाते हैं कि उन्हें देखकर और सुन कर आश्चर्य का पार नहीं रहता। पानी से बिजली निकाली जाती है और वह अनेक नगरों को जगमग-जगमग कर देती है [illegible] है।

[illegible] प्रश्न [illegible] मनुष्य के विज्ञान [illegible] क्या मनुष्यतर प्राणी [illegible] है ? नहीं।

करता है, उसी विज्ञान की बदौलत मनुष्य अपने आपको पशुओं से विशिष्ट—उच्च श्रेणी का मानता है ! इसे अगर मनुष्यता का दिवाला कहा जाय तो क्या अनुपयुक्त होगा ? इससे या तो मनुष्यता का मूल्य घटता है या फिर पशुता का मूल्य बढ़ जाता है—दोनों के बीच की दीवाल गिर पड़ती है।

आपने लक्ष्मी प्राप्त कर ली, अधिकार आपके हाथ में आ गया, लेकिन इससे क्या कर लिया ? क्या आपने अपने दो हाथों के बदले चार हाथ बना लिए ? क्या आपकी पाँच इन्द्रियों की जगह [illegible] इन्द्रियाँ हो गईं ? अगर नहीं, तब आपने क्या किया ? पुराणों में शिव के तीन नेत्र माने गये हैं। लोग शिव की पूजा करते हैं। पर शिव की जड़-मूर्ति की पूजा करके बैठ रहे और शिव के तृतीय नेत्र की तरह अपने अन्दर दिव्य-ज्ञान रूपी नेत्र पैदा न कर सके तो वह पूजा निरर्थक समझी जायगी। शिव की सच्ची पूजा है—स्वयं शिव स्वरूप कल्याणमय बन जाना।

जो लक्ष्मी प्राप्त करके, ऋद्धि, सम्पत्ति और अधिकार पा कर भी *दिव्य-ज्ञान रूप तृतीय नेत्र प्राप्त करके शिव-रूप न बना,* उसकी लक्ष्मी बिल्कुल व्यर्थ है उसका अधिकार धिक्कार योग्य है और उसकी समस्त ऋद्धि सम्पत्ति [illegible] करने वाला है।

आप [illegible] कि मैं उनके धन के [illegible] प्रति अपना घृणाभाव प्रकट [illegible] है। [illegible] नहीं है [illegible] यह सब [illegible] आपसे कोई मूल्य नहीं है, तथापि [illegible] वह यह कि सच्चा धन, सच्ची लक्ष्मी, वह है [illegible] शिव-शंकर—कल्याण कर्त्ता—बन जाय।

मित्रो ! बात साधारण है, छोटी-सी जान पड़ती है। पर इसके रहस्य का विचार कीजिए। बताइए उन चिड़ियों के मरने में दोष किसका है ? मृत्यु के लिए कुत्ता जिम्मेवर है या वे स्वयमेव ?

'वे स्वयमेव !'

क्यों ! उन चिड़ियों ने ऐसा कौन-सा काम किया, जिसके कारण उन्हें दुःख भोगना पड़ा ? मित्रो ! प्रकृति का नियम निराला है। उस नियम को कोई तोड़ नहीं सकता।

विचार कीजिए, क्या उन चिड़ियों को घर बाँटना था ? क्या उन्हें धन-दौलत का बँटवारा करना था ? असीम आकाश में स्वच्छन्द विचरण करने वाली चिड़िया, कुत्ते की क्या बिसात, शेर के भी हाथ आ सकती है ? फिर वह दोनों कुत्ते के द्वारा कैसे मारी गईं ! क्रोध के कारण। क्रोध ने उनका नाश कर डाला। अगर वे क्रोध में पागल होकर अपना आपा न भूल गई होतीं तो कुत्ते की क्या मजाल कि वह उनकी परछाईं भी पा सके।

भाइयो और बहिनो ! आपने चिड़ियों के मरने का कारण समझ लिया। आप उन्हें यह उपदेश देने के लिए भी तैयार हो गए कि क्रोध कभी नहीं करना चाहिए। पर आप इस उपदेश पर स्वयं भी अमल करते हैं ? मैं बहिनों से पूछता हूँ—बहिनो ! तुम तो कभी ऐसा क्रोध नहीं करतीं ?

आपकी तरफ से कोई उत्तर नहीं मिल रहा है। पर मुझे मालूम है कि अगर आप क्रोध न करतीं तो सास-बहू, ननद-भौजाई एवं देवरानी-जिठानी में कभी लड़ाई न होती। घर-घर कलह के केन्द्र न बन होते और आपका पारिवारिक जीवन कुछ का कुछ होता।

भाइयो, घर का अमृत छोड़ कर बाहर विष पीने क्यों दौड़ते हो ? देखो, इन विकारों ने तुम्हें कैसी विपन्न दशा में पटक रक्खा है! यह विकार भाई को भाई से लड़ाते हैं, सास-बहू का झगड़ा कराते हैं, पिता-पुत्र में वैर-भाव उत्पन्न करते हैं। धर्म-धर्म में सिर फुटौवल करवाते हैं, एक दूसरे के प्रति विषवमन कराते हैं। यह विकार आपको शिव नहीं बनने देते। ऐसे महान् शत्रुओं का नाश करना आपका सब से पहला कर्त्तव्य है।

मित्रो ! तुमने मनुष्य-जन्म पाया है। स्मरण रक्खो, यह जन्म सरलता से नहीं मिलता। न जाने कितने भव धारण करने के बाद, कौन-कौन-सी भयंकर यातनाएँ भुगतने के पश्चात्, कौनसे प्रबल पुण्य के उदय से यह जन्म तुम्हें मिल पाया है। अगर यह यों ही व्यर्थ हो गया—विकारों में मग्न रहकर इसे वृथा बर्बाद कर दिया, तो कौन जाने फिर कब ठिकाना लगेगा ?

अगर आपके पास धन है तो उसे परोपकार में लगाओ। यह धन आपके साथ जाने वाला नहीं है। इस धन के मोह में मत पड़ो। यदि इसके मोह में पड़ गये तो आपको मोक्ष प्राप्त नहीं हो सकेगा।

ईसु के पास एक आदमी आया। उसने कहा—आपने स्वर्ग का द्वार खोल दिया है। मैं स्वर्ग में जाना चाहता हूँ। मुझे वहाँ भेज दीजिए।

ईसा— तुम स्वर्ग में जाना चाहते हो ?

[illegible]

[illegible]

ज़हरीली जड़

समुद्रविजय सुत श्रीनेमीश्वर, जादव कुल को टीको।
रतन-कूंख धारिणी 'सिवादे', तेह नो नन्दन नीको॥
श्री जिन मोहनगारी छे, जीवन प्राण हमारो छे॥

शरीर में आठ अंग माने गये हैं और शेष अवयव उपांग कहलाते हैं। यह अंग शरीर के ही हिस्से हैं। शरीर से सर्वथा अस्तित्व इनका दृष्टिगोचर नहीं होता। इसी प्रकार सम्यक्त्व के अंग हैं। यह आठ अंग भी सम्यक्त्व से सर्वथा भिन्न नहीं हैं। आज इन आठ अंगों में से दूसरे अंग पर ही विचार करना है।

... आकांक्षा अथवा इच्छा ... सम्यक्त्व का अंग है

मैंने जहाँ तक इस श्लोक पर विचार किया है तथा अन्य विद्वानों के विचार सुने हैं, उससे यही प्रतीत हुआ है कि यहाँ धर्म शब्द का संबंध वर्णाश्रम धर्म के साथ है। अपने वर्णधर्म पर दृढ़ रहने का यहाँ प्रतिपादन किया गया है।

मित्रो! वर्णाश्रमधर्म के विषय में यदि ऐसा कड़ा उपदेश न दिया जाता तो संसार की व्यवस्था ठीक न रहती। ब्राह्मण को ब्राह्मणधर्म पर, क्षत्रिय को क्षत्रियधर्म पर, वैश्य को वैश्यधर्म पर और शूद्र को शूद्रधर्म पर कायम रहना चाहिए। इस कथन से यह आशय नहीं निकालना चाहिए कि ब्राह्मण का धर्म विद्याध्ययन करना है, इसलिए क्षत्रिय को विद्याध्ययन से बच कर अशिक्षित ही रहना चाहिए। तथा क्षत्रिय का धर्म वीरता धारण करना है अतएव ब्राह्मण को निर्बल एवं कायर रहना चाहिए। वैश्य का धर्म व्यापार करना है और शूद्र का सेवा करना। पर इसका अर्थ यह नहीं कि वैश्य की स्त्री को कोई अपहरण कर ले जाय तो वह वीरता के अभाव में मुँह ताकता खड़ा रहे या शूद्र विद्या के सर्वथा अभाव के कारण यथोचित सेवाधर्म का पालन ही न कर पावे।

मित्रो! याद रक्खो, प्रत्येक मनुष्य में चारों गुणों का होना अत्यावश्यक है। उनके बिना जीवन का यथोचित निर्वाह नहीं हो सकता। अब यह शंका होती है कि अगर प्रत्येक वर्ण वाले में चारों वर्ण वालों के गुण विद्यमान होना आवश्यक है तो वर्णाश्रम धर्म किस प्रकार निभेगा? इसका समाधान यह है कि प्रत्येक मनुष्य प्रत्येक [illegible] में [illegible] नहीं होता। वह किसी एक कार्य में ही विशि[illegible]
[illegible] कर सकता है। इसी आधार पर वर्ण
की [illegible]

बाबाजी ने एक फल तोड़ा और मुंह में डाला। जीभ में स्पर्श होते ही उनका मुंह जहर सा कडुआ हो गया। उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। देखने में जो फल इतना सुन्दर है, उसमें इतना कडुवापन! मगर ये धुन के पक्के थे। उन्होंने सोचा—देखना चाहिए, फल में कटुकता कहाँ से आई है? कटुकता की परीक्षा करने के लिए बाबाजी ने पत्ता चखा वह भी कटुक निकला। फिर भी तन्तु का आस्वादन किया तो वह भी कटुक! अन्त में जड़ उखाड़ कर उसे जीभ पर रक्खा तो वह भी कटुक निकली। बाबाजी ने मन में कहा—जिसकी जड़ ही कटुक है उसका फल मीठा कैसे हो सकता है? फल मीठा चाहिए तो मूल को सुधारना होगा।

मित्रो! आज भारत के बालक आपको देखने में, ऊपर से भले ही खूबसूरत दिखलाई देते हों, पर उनके भीतर कटुकता भरी पड़ी है। प्रश्न होता है—बालकों में यह कटुकता कहाँ से आई? परीक्षा करके देखेंगे तो ज्ञात होगा कि बालक रूपी फलों में माता रूपी मूल में से कटुकता आती है। अतएव मूल को सुधारने की आवश्यकता है। जब आप मूल को सुधार लेंगे तो फल आप ही आप सुधर जाएँगे। जड़ को सुधारने का भार मैं किसके सिपुर्द करूँ? मुझे तो इस समय बाबाजी की जगह दीवान साहब नजर आ रहे हैं। [illegible] की भाषा में बाबाजी [illegible] [illegible]। लोग अपने पिता [illegible] [illegible] दीवान साहब [illegible] [illegible]

[illegible]

भी ऐसा पुरुष नज़र नहीं आता जिसने एड़ी से चोटी तक साड़ी के सिवाय और कोई भी वस्त्र न पहनने की प्रतिज्ञा ग्रहण की हो। क्या यह काम स्त्री-हृदय की कोमलता परन्तु वीरता का नहीं है ? इसलिए मैं कह सकता हूँ कि स्त्रियों को सुधारने वाला कोई हो तो वे बहुत शीघ्र सुधर सकती हैं।

पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में त्याग की मात्रा अधिक दिखाई देती है। पुरुष चालीस वर्ष की अवस्था में विधुर हो जाय तो समाज के हितचिन्तकों के मना करने पर भी, जाति में तड़ डालने की परवाह न करके दूसरा विवाह करने से नहीं चूकता। दूसरी तरफ विधवा बहिनों की ओर देखिए जो बारह-पन्द्रह वर्ष की उम्र में विधवा हो गई हैं। वे कितना त्याग करके आजीवन ब्रह्मचर्य का पालन करती हैं ! क्या यह त्याग पुरुषों के त्याग से बढ़ कर नहीं ?

पुरुष वर्ग में त्याग की तो इतनी भावना भी नहीं कि वह कम से कम वृद्धावस्था में कन्या से विवाह न करे ! कहते लज्जा आती है कि धनवान् वृद्ध पुरुष अपने धन के नशे में इतने अन्धे हो जाते हैं कि उन्हें अपने हिताहित का तनिक भान नहीं रहता और वे ऐसे काम कर बैठते हैं, जिन्हें सुनते ही घृणा उत्पन्न होती है।

मित्रो ! अब उठो। अपने जीवन को सुधारो और अपने दुःखों को दूर करने के लिए स्त्रियों की शिक्षा का प्रबन्ध करो।

स्त्रीशिक्षा का तात्पर्य कोरा पुस्तकज्ञान नहीं है। पुस्तक पढ़ लिखा दिया और छुट्टी [illegible] उससे काम नहीं चलता। [illegible] [illegible] ज्ञान [illegible] नहीं ज्ञान का [illegible] ज्ञान [illegible] [illegible] अज्ञान को [illegible] जायगी तभी शिक्षा [illegible]

सभी से इसका पतन प्रारम्भ हुआ है और आज भी उस विरोध के कटुक फल भुगतने पड़ रहे हैं।

मित्रो ! क्या अब भी अहिंसा के सम्बन्ध में आप सन्देह है ?

'नहीं' महाराज !

भाइयो ! आप लोग आस्तिक हैं, श्रद्धाशील हैं। इस श्रद्धाशील के कारण आप 'जी' और 'तथ्यवचन' कह देते हैं और मेरा क अंगीकार कर लेते हैं। पर इस कथन को जीवन में कहाँ उतारते ! अच्छी से अच्छी औषधि सेवन किये बिना फलप्रद नहीं होती सुन्दर से सुन्दर विचार भी जीवन में परिणत किये बिना लाभप्र नहीं हो सकता। मेरे उपदेश की और आपके श्रवण की सार्थक इसीमें है कि उसे आप जीवन में व्यवहृत करें।

आप यूरोप निवासियों को नास्तिक कहते हैं पर वे वच पक्के होते हैं। वे जिस कार्य के लिए 'हाँ' भर देते हैं, उसे किये नहीं रहते। ऐसी हालत में उन्हें आस्तिक कहना चाहिए या नास्ति और इस दृष्टि से आप किस कोटि में चले जाएँगे यह भी सोचिए। एक आदमी कहता तो है कि रोटी खाने से भूख जाती है, पर वह खाता नहीं है। दूसरा कहता है—रोटी खाने से नहीं मिटती पर वह समय पर रोटी खा लेता है। अब आप बता किसकी भूख मिटेगी ?

'खाने वाले की'

लोगों ने कहा—तेरी भैंस हमारा सारा खेत खा गई है।

मियाँ— भैंस अभी मैं लाया ही कहाँ हूँ ?

लोग—तेरी बीबी ने पीहर वालों के यहाँ कहाँ भेजी है

मियाँ समझे। उन्हें होश आया। अपनी भूल समझ प शर्मिन्दा हुए।

स्त्रीशिक्षा का कार्य जब आरम्भ होगा तब होगा; पर अ विरुद्ध अभी से काना-फूसी होने लगी है। जो लोग ऐसा करते हैं वक्त मियाँजी का दृष्टान्त चरितार्थ करते हैं।

एक ही बात नहीं, अनेक बातों में अक्सर इसी प्रकार बेबुनि लड़ाई-झगड़ा खड़ा हो जाता है और लाखों रुपया कचहरी देवी भेट चढ़ जाता है। बेचारे जज हैरान-परेशान हो जाते हैं पर व लड़ते-लड़ते नहीं थकते। खैर।

मैं आपको स्त्रीशिक्षा के सम्बन्ध में कह रहा हूँ। स्त्रीशिक्षा अर्थ यह नहीं कि आप अपनी बहू बेटियों को यूरोपियन लेडी ब और न यही अर्थ है कि उन्हें घूंघट में लपेटे रहें। मैं स्त्रियों को शिक्षा देने का समर्थन करता हूँ जैसी सीता, सावित्री, द्रौपदी, म सुन्दरी और अंजना आदि को मिली थी, जिसकी बदौलत वे प्र स्मरणीय बन गई हैं और उनका नाम मांगलिक समझ कर श्रद्धाभक्ति के साथ प्रतिदिन जाता है। उन्हें ऐसी शिक्षा दी जाय कि म व अज्ञान के अन्धकार से बाहर निकल कर ज्ञान के प्रकाश आ सके। उन्हें ऐसी [illegible] की आवश्यकता है जिसमें वे भलाई [illegible] उपदेश के अपना सके। उन्हें ऐसी [illegible] मिलनी चाहिए कि

भाइयो और बहिनो आजकल आपकी विलासिता बहुत बढ़ गई है। आपकी विलासिता के कारण आज भारत में कई करोड़ मनु[ष्य] भूखों मर रहे हैं। इन पर जरा दया करो। इन्हें भूखों मरने [से] बचाओ। आपकी विलासिता के कारण यह कैसे भूखों मर रहे हैं यह आपको मालूम नहीं पड़ता। याद रखिए, जिस खर्च को आ[प] तुच्छ समझकर कर रहे हैं, वही उनके भूखों मरने और दुःख उठाने का कारण बन जाता है।

मैंने बहुत दिनों पहले कौशलेश्वर और काशीनरेश की बात क[ही] थी। कौशलेश्वर ने काशीनरेश को बहुत कुछ सुधार दिया था। [एक] दिन वह था जब वे गरीब प्रजा के भक्षक थे, वही प्रजारक्षक बन ग[ये]। काशी नरेश की रानी का नाम करुणा था। एक दिन उसे वरुणा न[दी] में स्नान करने की इच्छा हुई। उसने महाराज से स्नान के लिए ज[ाने] की आज्ञा माँगी। महाराज स्त्रियों को कोठरी में बन्द रखने के पक्ष[पाती] नहीं थे। वे चाहते थे कि स्त्रियाँ भी सुखपूर्वक प्राकृतिक छटा अवलो[कन] करें और प्रकृति की पाठशाला से कुछ सीखें। अतएव उन्होंने बि[ना] किसी आनाकानी के महारानी को आज्ञा दे दी।

महारानी अपनी सौ दासियों के साथ, रथ पर सवार हो[कर] नदी पर पहुँची। वरुणा के तट पर गरीबों की झोंपड़ियाँ बनी हुई थ[ीं]। उनमें कुछ मस्त फकीर भी रहते थे। रानी ने तट-निवासियों [को] कहला भेजा—महारानी स्नान करना चाहती हैं इसलिए थोड़ी [देर] के लिए सब लोग अपना अपना झोंपड़ा छोड़कर बाहर चले जा[एँ]। सब लोग [illegible] गये। महारानी अपनी साथियों के स[ाथ] [illegible] नहार[illegible] [illegible] लगी। उ[illegible]

गई। लोग अपनी झोंपड़ियों के पास आये, तब उन्होंने वहाँ का दृश्य देखा तो सन्न रह गये। झोंपड़ियों के स्थान पर राख का ढेर देख कर उनके शोक का पार न रहा। रोने और चिल्लाने लगे। किसी ने कहा—हाय! हमारा सर्वस्व भस्म हो गया! दूसरे ने कहा—हाय! अब हम कहाँ आश्रय लेंगे, गर्मी-सर्दी, पानी से बचने का एक यही ठिकाना था सो छिन गया! अब हमारी क्या गत होगी!

पहले ही कहा जा चुका है कि वहाँ कुछ मस्त फक्कड़ भी रहते थे। उन्होंने रोने-चिल्लाने वालों को ढाढस बँधाया और समझाया—मूर्खो! रोने से झोंपड़ी खड़ी नहीं हो जायगी। हमारे साथ चलो और राजा से फरियाद करो।

लोग राजा से फरियाद करने चले। आगे-आगे बाबाजी और पीछे-पीछे गरीबों की फौज। लोगों ने उन्हें जाते देख पूछा—भाई, आज किधर चढ़ाई करने जाते हो? जब उन्हें कारण बतलाया गया तो उन्होंने बिना माँगी सलाह देते हुए कहा—बावले हो गये हो क्या! महारानी ने झोंपड़ियाँ जला दीं तो कौन-सी सोने की लंका जल गई! घास-फूस की कमी तो है नहीं, फिर खड़ी कर लेना। छोटी-सी बात के लिए महाराज के पास पहुँचना क्या भली बात है?

गरीब बेचारे [illegible] लोगों का इन बातों का कुछ भी असर [illegible] आप समझ कर बात कही है [illegible] झोंपड़ियाँ जलाई गई हैं। [illegible] [illegible] [illegible] या [illegible] सकता है [illegible] [illegible] क्या [illegible] इसके अतिरिक्त [illegible] झोंपड़ियाँ [illegible] मूल्यवान हैं, जिनसे

[श्री]मान् आपके लिए अपने महल हैं। इसलिए यह कोई साधारण [घट]ना नहीं है। हम तो कहते हैं कि तुम भी हमारे साथ चलो और [ज़ोर]दार शब्दों में राजा से इस अत्याचार के विरुद्ध प्रार्थना करो।

[यह बा]त लोगों की समझ में आ गई। कल हमारे महल ही जलाये [जा]ने लगेंगे! तो हम लोगों को भी इनका साथ देना चाहिए और इस [अ]त्याचार को अन्तिम बना देना चाहिए।

इस प्रकार लोगों का एक बड़ा भारी झुण्ड राजमहल के चौक [में] जा खड़ा हुआ। महाराज ने जनता का कोलाहल सुन कर महल [के] झरोखे में से बाहर की ओर झाँका तो बड़ी-सी भीड़ दिखाई दी। [उन्]होंने पूछा—तुम लोग क्यों इकट्ठे होकर आये हो?

प्रजा—महाराज, गरीबों का सत्यानाश हो गया। अब यह [बेचा]रे किस प्रकार अपने गर्मी-सर्दी के दिन बिताएँगे!

राजा—क्यों? क्या हुआ?

प्रजा—अन्नदाता, महारानीजी स्नान करने गई थीं। उन्हें ठण्ड [लग]ी। तापने के लिए उन्होंने एक झौंपड़ी में आग लगवाई और हवा [के] वेग में तमाम झौंपड़ियाँ जल कर भस्म हो गई हैं। यह बेचारे [घर]हीन हो गये!

राजा—ऐसा अत्याचार हुआ! अच्छा ज़रा ठहरो।

काशी-नरेश ने चम्पकवती दासी को महारानी को बुला लाने का आदेश दिया।

चम्पकवती महारानी के पास गई। उसने हाथ जोड़ कर कहा—महारानीजी, अन्नदाता आपको याद कर रहे हैं।

महारानी—आज इस वक्त क्यों ?

चम्पकवती—मैंने जो कहा था, आखिर वही हुआ।

महारानी—तूने क्या कहा था और क्या हुआ ?

चम्पकवती—मैंने नदी तट की झोंपड़ियाँ न जलाने के लिए प्रार्थना की थी। आप न मानीं। तमाम झोंपड़ियाँ भस्म हो गईं। अब लोगों ने अन्नदाता के सामने फ़रियाद की है।

महारानी—तो क्या मुझे बुलाया है ?

चम्पकवती—जी हाँ।

महारानी—प्रजा के सामने, मुझे !

चम्पकवती—जी हाँ।

महारानी—महाराज नशे में तो नहीं हैं ! प्रजा के सामने मे फैसला होगा ?

चम्पक०—मैं तो अन्नदाता की आज्ञा पालने आई हूँ।

आखिर महारानी महाराज के सामने उपस्थित हुईं। महारा ने पूछा—रानीजी, यह लोग जो फ़रियाद कर रहे हैं सो क्या सच है

महारानी—महाराज, बात तो सच है।

महाराज—तो इसका दण्ड ?

महारानी—मैं महारानी हूँ। मुझे दण्ड ?

अन्नदाता, हमारा न्याय हो चुका । अब हमारा कोई दावा नहीं
कृपा कर महारानीजी को इतना कड़ा दण्ड न दीजिए।

महारानी बोली—महाराज, आप लोगों की बातों में न आ
आपका न्याय अमर हो। आपका न्याय उचित है। अब इन्हें
लौटाइए। मैं प्रसन्न हूँ।

प्रजा—नहीं महाराज, हम अपनी महारानीजी को ऐसा
नहीं दिलवाना चाहते! अब हम कुछ भी नहीं चाहते। हम
फरियाद वापस लौटा दीजिए।

महाराज—प्रजाजनो! तुम्हारी भक्ति की मैं कद्र करता हूँ,
न्याय के समक्ष मैं विवश हूँ। महारानी भी यही चाहती हैं।

महारानी—अन्नदाता, आज का दिन बड़े सौभाग्य का दिन
आज मैं अपने पति पर गर्व कर सकती हूँ। आपने न्याय की र
की है। अब मुझे आज्ञा दीजिए। मैं जाती हूँ।

महारानी ने अपने बहुमूल्य आभूषण और वस्त्र उतार दि
साधारण पोशाक पहन कर वह महल से विदा होने लगी।

राजघराने की स्त्रियाँ और प्रजा की स्त्रियाँ उन्हें रोकने लगीं
पर रानी ने किसी की न सुनी। रानी ने कहा—बहिनो, मुझे रो
मत। अगर तुम्हारी मेरे साथ सहानुभूति है तो तुम भी म
[illegible] [illegible] अत्याचार किया है। [illegible]
[illegible] है।

[illegible]
[illegible] कथा माता और द्रौपदी ने [illegible]

[illegible] कैसे ? आज उनका नाम स्मरण आते ही श्रद्धा-भक्ति से मस्तक क्यों झुक जाता है ? अगर धर्म और न्याय के लिए उन्होंने कष्ट न उठाये होते और राजमहल में रह कर भोगविलास का जीवन बिताया होता तो कौन उन्हें याद करता ? मैं चक्की चलाऊँगी, चर्खा कातूंगी, और अपने अपराध का प्रायश्चित करूँगी।

भाइयो और बहनो ! आपने महारानी करुणा की बात सुनी। उनके जरा से विलास की बदौलत लोगों को कितना कष्ट हुआ ?

आप कलकत्ता जाते हैं और सोना खरीद लाते हैं। बहनें उसकी चूड़ियाँ बनवा कर पहनती और अभिमान करती हैं। पर क्या कभी उन्होंने यह भी सोचा है कि यह चूड़ियाँ कितने गरीबों के सर्वनाश से बन कर तैयार हुई हैं ? हाय हाय ! और तो क्या कहूँ, आपने जो कपड़े पहने हैं इन्हें देखो। इनमें चर्बी लगी है। न जाने कितने पशुओं को पीस कर, उनका क्रूरता-पूर्वक कत्ल करके यह चर्बी निकाली गई होगी। क्या आपका हृदय इतना कठोर है कि गरीबों और मूक पशुओं की इस दुर्दशा को देखकर भी नहीं पिघलता।

भारत की कंगाली का, उसकी दीनता-हीनता और दुर्दशा का प्रधान कारण विलासिता की वृद्धि है। अगर आप देश की लाज रखना चाहते हैं [illegible]

[illegible]

हुए और उसे पहना। जब राजा कुमारपाल, जो आचार्य हेमचन्द्र का शिष्य था, दर्शन करने आया तब उसने आचार्य को खादी पहने देखकर—महाराज, आप हमारे गुरु हैं। आपको यह मोटी और खुरदरी खादी पहने देखकर मुझे लज्जा आती है। हेमचार्य बोले—'भाई, तुम्हें खादी पहने देखकर लज्जा नहीं आनी चाहिए। लज्जा तो भूख के मारे मरने वाले गरीब भाइयों को देख कर आनी चाहिए।

हेमचन्द्राचार्य के इन शब्दों ने राजा कुमारपाल पर अद्भुत प्रभाव डाला, वह स्वयं खादी भक्त बन गया। उसने चौदह वर्ष तक, प्रति वर्ष एक करोड़ रुपया गरीबों की स्थिति सुधारने में व्यय किया।

मित्रो! सोचिये, खादी ने क्या कर दिखाया! कितने गरीबों की रक्षा की? आप खादी से क्यों डरते हैं? 'क्या राज की तरफ से आप को रोक टोक है? दीवान साहब! क्या खादी पहनना आपके राज्य में निषिद्ध है?

मित्रो! दीवान साहब कहते हैं—खादी पहनना निषिद्ध नहीं। आप खादी से भयभीत क्यों होते हैं?

खादी के अतिरिक्त अन्य विलासवर्धक वस्त्रों को पहनना या अन्य कार्य मे लाना गरीबों की झौंपड़ियो मे आग लगाने के समान है। आपने गरीबो की झौंपड़ियो मे बहुत आग लगाई है, अब करुणा करके, गांधी की तरह मजूर बनकर प्रायश्चित कर डालिए।

मजूर बनने मे कष्ट तो जरूर है पर कष्ट झेलने में ही मर्दानगी है। आज आप लोग सीता और राम को क्यों याद करते हैं? कष्ट भोगने के कारण ही। अगर वे राजमहलों में बैठ कर

हिन्दू शास्त्र भी किसी जीव को न मारने का विधान करता है, परन्तु जैन शास्त्रों में इसका बहुत अच्छा, स्पष्ट और बारीक विवेचन किया गया है। जैन शास्त्रों में हिंसा के दो भेद किये हैं—एक संकल्पजा हिंसा और दूसरी आरम्भजा हिंसा।

"सङ्कल्पाज्जाता सङ्कल्पजा। मनसः सङ्कल्पाद् द्वीन्द्रियादिप्राणि-मांसास्थिचर्मनखदन्ताद्यर्थं व्यापादयतो भवति।

अर्थात्—मांस, हड्डी, चमड़ी, नाखून, दांत आदि के लिए जान-बूझ कर द्वीन्द्रिय आदि जीवों को मारना संकल्पजा हिंसा कहलाती है।

आरम्भाज्जाता आरम्भजा। तत्रारम्भो हलदन्ताल[illegible]खननलक्षणः। तस्मिन् सूक्ष्मपिपीलिकाद्यस्य गृहकारिकादि [illegible] द्रावकस्यापीति।

अर्थात्—हल जोतने से तथा कुदाली आदि उपकरणों से घर आदि बनाने में जो सूक्ष्म जीवों की हिंसा होती है वह आरंभजा हिंसा है।

तत्र [illegible] सङ्कल्पतो यावज्जीवमपि प्रत्याख्याति, न [illegible] नैव [illegible], इति आरम्भजमिति तस्यावश्यकता [illegible]

[illegible] हिंसा भी सकल्पजा हिंसा का त्यागी [illegible] आरंभ [illegible] नहीं हो सकता आरंभ द्वारा [illegible] हिंसा हो ही जाती है

क्या आप बता सकते हैं कि इस नियम का क्या कारण था? पहले से युद्ध की सूचना देकर अपने शत्रु को तैयार होने का अवसर क्यों दिया जाता था? राजा लोग अचानक आक्रमण क्यों नहीं कर देते थे?

मित्रो! इस परम्परा में एक रहस्य है। जिस दावे को पूरा करने के लिए राजा आक्रमण करता है, उसे कदाचित् वह राजा, जिस पर आक्रमण करना है, बिना युद्ध किये ही स्वीकार कर ले। ऐसी अवस्था में वह युद्ध निरपराधी सैनिकों की हिंसा का कारण होगा और अनावश्यक भी होगा। इस प्रकार निरपराध जीवों की हिंसा से बचने के लिए ही युद्ध से पहले दूसरे राजा के सामने माँग पेश कर दी जाती थी। दूसरा राजा जब आक्रमणकारी की माँग स्वीकार नहीं करता था तो उसे अपराधी समझ कर वह आक्रमण कर देता था।

इससे यह विदित हो जाता है कि श्रावक अपराधी जीवों की हिंसा का एकान्ततः त्यागी नहीं होता।

अहिंसा कायर बनाती है या कायरों का शस्त्र है, यह बात वही कह सकता है जिसने अहिंसा का स्वरूप और सामर्थ्य नहीं समझ पाया है। इससे विपरीत सत्य तो यह है कि अहिंसा का व्रत वीरशिरोमणि ही धारण कर सकते हैं। जो कायर है वह अहिंसा को लजावेगा। वह [illegible] नहीं सकता। कायर अपनी कायरता को छिपाने के लिए [illegible] अपने आपको अहिंसक कहे [illegible] पर वास्तव में वह सच्चा अहिंसक [illegible] व्यर्थ प्राण हरण [illegible] राजा [illegible] है। वह इसे महान

वे इतनी अधिक हिंसा करने के पश्चात् पेट भरने में समर्थ हो पाते हैं। फिर भी हिन्दू लोग अपने आपको अहिंसक मानते हैं।

हम पादरी लोग सिर्फ़ एक बकरे को मारते हैं और उनसे अनेक आदमियों का पेट भर जाता है। इससे हम बहुत कम हिंसा करते हैं ?

मित्रो ! यह पादरी भोले भाले लोगों की आँख में धूल झौंकने का प्रयास कर रहा है। वह इस युक्ति से हिन्दुओं के प्रति घृणा का भाव उत्पन्न करवाना चाहता है। वह समझता है, यह तर्क सुनकर बहुत से लोग ईशु की शरण में आजाएँगे। मगर यह पादरी भारी भ्रम में है। उसे समझ लेना होगा कि वह जो दलील पेश करता है, सच्चे अहिंसावादी के सामने पल भर भी नहीं ठहर सकती।

जरा विचार कीजिए, बकरा क्या आसमान से टपक पड़ा है! उसका जन्म किसी बकरी के गर्भ से हुआ है। उस बकरी ने कितना चारा खाया होगा और कितना पानी पिया होगा, जिससे गर्भ का पोषण हुआ ? तथा जन्म लेने के बाद बकरे ने कितना घास खाया और कितना पानी पिया है, जिससे उसका शरीर पुष्ट हुआ है ? इसका हिसाब लगाना अत्यावश्यक है। बकरे की हिंसा और धान पैदा करने की हिंसा की इस आधार पर तुलना की जाय, तो मालूम होगा कि हिंसा किसमें ज्यादा है ?

इस सम्बन्ध में एक बात और भी है। क्या धान आदि द्वारा पेट भरने वाला इतना क्रूर स्वभाव का हो सकता है जितना बकरे का मांस खाने वाला हो सकता है ? यदि नहीं तो मांस खाने वाले के

१२

नारी-सम्मान

धर्म का सम्बन्ध आत्मा के साथ है। आत्मा के परम निश्रेयस के लिए धर्म की उपासना की जाती है। धर्म को धारण करने में धर्म पालने वाले की रुचि प्रधान है। इसमें लोभ, लालच या धमकी के लिए कोई स्थान नहीं है। आजकल धर्म-परिवर्तन करने के लिए धर्मान्ध लोग अनेक प्रकार की लुचाई और गुंडापन से काम लेते हैं जिसमें सचाई नाम मात्र को नहीं होती पर धर्म लुचाई का नहीं, सचाई का है जिसे अपने धर्म की सचाई पर विश्वास है वह अपने धर्म की सचाई तो दूसरों को समझायगा पर अपने धर्म में लाने के लिए लुचाई का प्रयोग हर्गिज़ न करेगा। ऐसा करने वाले वही हो सकते हैं जिन्होंने अपने मन की सचाई का अनुभव नहीं किया है और मजहब की मदिरा पीकर बेभान हो रहे हैं।

सचाई के धर्म में किसी को लोभ देकर या दबा कर अपने धर्म धर्मांतर की आवश्यकता ही नहीं होती। वहाँ योग्यता पर ही ध्यान दिया जाता है। जैनधर्म ने योग्यता पर ही ध्यान दिया है। जो वह योग्यता प्राप्त कर लेता है उसी को जैन धर्म प्राप्त हो जाता है।

धर्म धारण करने की योग्यता क्या है, इस संबंध में शास्त्र में कहा गया है कि श्रावक वही है जो सम्यक्त्वधारी हो। सम्यक्त्व—समकित—के अभाव में अणुव्रतों का ठीक-ठीक पालन नहीं हो सकता। पाँच अणुव्रत और तीन गुणव्रत श्रावक को जीवन-पर्यन्त पालने योग्य हैं। सामायिक, देशावकाशिक व्रत, तथा पौषधोपवास और अतिथिसंविभाग, यह चार शिक्षाव्रत नियत समय पर अनुष्ठान किये जाते हैं। इन बारह व्रतों को श्रावकधर्म कहा जाता है।

अब प्रश्न होता है कि श्रावकधर्म का मूल क्या है ? मूल के बिना किसी भी वस्तु की स्थिति रहना कठिन है। वृक्ष में और कोई भाग न हो तो हानि नहीं, पर मूल अवश्य होना चाहिए। मूल (जड़) होगा तो दूसरे भाग अपने आप उत्पन्न हो जाएँगे। इससे विपरीत मूल के अभाव में दूसरे भाग अगर होंगे तो भी वे टिक नहीं सकेंगे—उनका नाश होना अवश्यंभावी है।

भाइयो ! जैसे अन्य वस्तुओं के मूल पर ध्यान रखना आवश्यक है [illegible] मूल पर भी ध्यान रखना [illegible] है [illegible] का मूल क्या है [illegible]

[illegible]
[illegible]

अर्थात्—जैसे मकान में प्रवेश करने के लिए द्वार की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार धर्म रूपी मकान में प्रवेश करने के लिए 'समकित' द्वार है। जैसे किसी भी वस्तु को रखने के लिए आधार की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार धर्म रूपी द्रव्य को रखने के लिए समकित आधार है। जैसे बहुमूल्य धन की सुरक्षा के लिए तिजोरी उपयुक्त होती है इसी प्रकार धर्म रूपी धन की रक्षा के लिये समकित रूपी तिजोरी उपयुक्त है।

सम्यक्त्व अथवा सम्यग्दृष्टि के अभाव में सत्य-असत्य का समीचीन ज्ञान नहीं होने देता। दृष्टि जब तक मलीन रहती है तब तक निर्मल ज्ञान कैसे हो सकता है? इसलिए सम्यक्त्व की बड़ी महिमा गाई गई है। एक जगह कहा है—

> पशुत्वेऽपि नरायन्ते सम्यक्त्वग्रस्तचेतनाः ।
> नरत्वेऽपि पशूयन्ते मिथ्यात्वग्रस्तचेतनाः ॥

अर्थात्—सम्यक्त्व के अभाव में मनुष्य भी पशु के समान आचरण—विवेकविहीन प्रवृत्ति करता है और सम्यक्त्व सहित चेतना वाले पशु भी मनुष्य के समान प्रवृत्ति करते हैं।

अतएव धर्म धारण करने से पहले सम्यक्त्व धारण करना आवश्यक है सम्यक्त्व क्या है?

> प्रशमसंवेगनिर्वेदानुकम्पास्तिक्याभिव्यक्तिलक्षणं सम्यक्त्वम् ।
>
> तत्त्वार्थभाष्य अ० १ सू० [illegible]

[illegible] वस्तु का विचार करना हो उसे समभाव से [illegible] समभाव के बिना किसी वस्तु का ठीक निर्ण

विद्या और विनय अर्थात् ज्ञान और सदाचार से युक्त ब्राह्मण हो या गाय हो, हाथी हो या कुत्ता हो अथवा चाण्डाल हो, जो इन सब में समभाव रखने वाला हो वही समदर्शी पण्डित है।

अगर साधु का वेष धारण करने वाले किसी व्यक्ति में समदर्शीपन न हो तो उसे कोई साधु कहेगा? बीकानेर-नरेश अपने राज्य में ब्राह्मण या चाण्डाल में समान न्याय का आचरण न करें तो उन्हें कोई आदर्श राजा कहेगा?

'नहीं!'

और भी देखिए। डाक्टर का काम चिकित्सा करना है। किसी की भयंकर बीमारी में अगर मल-मूत्र की परीक्षा करना आवश्यक हो और वह घृणा लाये तो क्या वह डाक्टर कहलाने योग्य है?

'नहीं!'

आप लोगों ने सब प्रश्नों का सही उत्तर दे दिया। अब यह बतलाइये कि जो पुरुष या स्त्री-समाज के साथ समभाव का व्यवहार न करे उसे क्या कहना चाहिए?

आप जिस समाज में रहते हैं उस समाज के प्रत्येक व्यक्ति के साथ समभाव का व्यवहार नहीं करते तो उस समाज के प्रति अत्याचार करते हैं। इस लिए इस प्रश्न का उत्तर देने में भी हिचकिचाते हैं।

मित्रो! स्त्री पुरुष का आधा अंग है। क्या यह सम्भव है कि किसी का आधा अंग बलिष्ठ और आधा अंग निर्बल हो? जिसका आधा अंग निर्बल होगा उसका पूरा अंग निर्बल होगा। ऐसी स्थिति में आप पुरुष समाज की उन्नति के लिए जितने उद्योग करते हैं वे सब असफल हो रहेंगे, अगर पहले आपने महिला समूह की स्थिति

सुधारने का प्रयत्न न किया। आप अंग्रेज सरकार से स्वराज्य की माँग करते हैं किन्तु पहले अपने घर में तो स्वराज्य स्थापित कर स्त्रियों के साथ समता और उदारता का व्यवहार करो। आप स्त्रियों के प्रति समभाव न रख कर, उन्हें गुलाम बनाकर स्वराज्य की माँग किस मुँह से करते हैं ?

यह स्त्रियाँ जग-जननी का अवतार हैं। इन्हीं की कूँख से महावीर, बुद्ध, राम, कृष्ण आदि उत्पन्न हुए हैं। पुरुष-समाज पर स्त्री-समाज का बड़ा भारी उपकार है। उस उपकार को भूल जाना, उनके प्रति अत्याचार करने में लज्जित न होना घोर कृतघ्नता है।

मैं समभाव का व्यवहार करने के लिए कहता हूँ। इसका यह अभिप्राय नहीं है कि स्त्रियों को पुरुषों के अधिकार दे दिये जाएँ। मेरा आशय यह है कि स्त्रियों को स्त्रियों के अधिकार देने में कृपणता न की जाय। नर और नारी में प्रकृति ने जो विभेद कर दिया है, उसे मिटाया नहीं जा सकता। अतएव उनके कर्त्तव्यों में भी भेद रहेगा ही। कर्त्तव्य के अनुसार अधिकारों में भी भेद भले ही रहे, मगर जिस कर्त्तव्य के साथ जिस अधिकार की आवश्यकता है वह उन्हें दिये बिना वे अपने कर्त्तव्य का पूरी तरह निर्वाह नहीं कर सकेंगी।

[illegible]

अन्य ग्रन्थों में उसे ब्रह्मा की पुत्री बतलाया है। ऋषभदेव ब्रह्मा थे और उनकी पुत्री ब्राह्मीकुमारी थी। इस प्रकार दोनों कथनों से एक की बात फलित होती है। जैन-ग्रन्थों से पता चलता है कि ऋषभदेव की दूसरी पुत्री 'सुन्दरी' ने गणित विद्या का आविष्कार एवं प्रचार किया था।

पुरुषो! स्त्री जाति ने तुम्हें ज्ञानवान और विवेकी बनाया है, फिर किस बूते पर तुम इतना अभिमान करते हो? किस अभिमान से तुम उन्हें पैर की जूती समझते हो? बिना किसी कारण के एक उपकारिणी जाति का असह्य अपमान करना, उसका तिरस्कार करना धूर्तता और नीचता है। आपकी इन करतूतों से आपका समाज आज रसातल की तरफ जा रहा है। प्रकृति के नियम को याद रखिए, बिना स्त्री-जाति के उद्धार के आपका उद्धार होना अत्यन्त कठिन है।

कभी-कभी विचार आता है—धन्य है स्त्री-जाति! जिस काम को पुरुष घृणित समझता है और एक बार करने में भी हाय तोबा मचाने लग जाता है, उससे कई गुना अधिक कष्टकर-कार्य स्त्री-जाति हर्ष-पूर्वक करती है। वह कभी नाक नहीं सिकोड़ती। मुँह से कभी 'उफ्' तक नहीं करती। वह चुपचाप अपना कर्त्तव्य समझ कर, अपने काम में जुटी रहती है ऐसी महिमा है स्त्रीजाति की!

हे मातृ जाति! तू जिसका एक बार हाथ पकड़ लेती है, जन्म-भर के लिए उसी की हो जाती है। मृत्यु पर्यन्त उसका साथ देती है फिर भी निष्ठुर पुरुषों ने तुझे नरक का द्वार बतला कर अपने [illegible] है। अनेक प्रकार पुरुषों ने तुझे नीचा [illegible] जाता है। [illegible] वैराग्य में स्त्री अगर बाधक है तो स्त्री के

अन्य ग्रन्थों में उसे ब्रह्मा की पुत्री बतलाया है। ऋषभदेव ब्रह्मा हैं और उनकी पुत्री ब्राह्मीकुमारी थीं। इस प्रकार दोनों कथनों से एक ही बात फलित होती है। जैन-ग्रन्थों में पता चलता है कि ऋषभदेव की दूसरी पुत्री 'सुन्दरी' ने गणित विद्या का आविष्कार एवं प्रचार किया था।

पुरुषो ! स्त्री जाति ने तुम्हें ज्ञानवान और विवेकी बनाया है, फिर किस बूते पर तुम इतना अभिमान करते हो ? किस अभिमान में तुम उन्हें पैर की जूती समझते हो ? बिना किसी कारण के एक उपकारिणी जाति का असह्य अपमान करना, उसका तिरस्कार करना धूर्तता और नीचता है। आपकी इन करतूतों से आपका समाज आज रसातल की तरफ जा रहा है। प्रकृति के नियम को याद रखिए, बिना स्त्री-जाति के उद्धार के आपका उद्धार होना अत्यन्त कठिन है।

कभी-कभी विचार आता है—धन्य है स्त्री-जाति ! जिस काम को पुरुष घृणित समझता है और एक बार करने में भी हाय तोबा मचाने लग जाता है, उससे कई गुना अधिक कष्टकर-कार्य स्त्री-जाति हर्ष-पूर्वक करती है। वह कभी नाक नहीं सिकोड़ती। मुंह से कभी 'उफ्' तक नहीं करती। वह चुपचाप अपना कर्त्तव्य समझ कर अपने काम में जुटी रहती है। ऐसी सी है स्त्रीजाति की !

हे मातृ जाति ! तू जिसका एक बार हाथ पकड़ लेती है, जन्म-भर के लिए उसी की हो जाती है। मृत्यु पर्यन्त उसका साथ देती है फिर भी [illegible] पुरुषों ने तुम्हें नरक का द्वार बतला कर अपने पैर की [illegible] है। अनेक प्रकार पुरुषों ने तुझे नीचा [illegible] है। पुरुष के वैराग्य में स्त्री अगर बाधक है तो स्त्री के

बोलिए, घबराते क्यों हैं ? क्या उस समय बराबरी का आसन देकर नहीं बैठे थे ?

'बैठे थे !'

तो अब क्यों पीछे फिरते हो ? क्या आपका उद्देश्य पूर्ण होगया इसीलिए ?

आज तो आपने विवाह-सम्बन्ध में भी बड़ी गड़बड़ी पैदा कर दी है। जैन-शास्त्र दम्पति के लिए 'सरिसवया' विशेषण लगा कर पति-पत्नी की उम्र-सम्बन्धी योग्यता का उल्लेख करता है। पर देखते हैं कि आज साठ वर्ष का बूढ़ा डोकरा बारह वर्ष की लड़की का पाणिग्रहण करते नहीं लजाता ! आप अपने अन्तःकरण से पूछिए-क्या यह जोड़ा है ? आपके दिल की न्याय-परायणता और करुणा कहाँ चली गई है ? किस शास्त्र के आधार पर आप ऐसे कृत्य करते हैं ? आपके शास्त्र में 'असरिसवया' (विसदृश उम्र वाले) का पाठ आया होगा !

प्रधानमन्त्रीजी ! क्या पुरुष-समाज के यह कृत्य शोभाजनक हैं ?

प्रधानमन्त्री (सर मनु भाई मेहता)—जी नहीं।

प्रधानमन्त्रीजी ! लोग न मेरी बात मानते हैं और न शास्त्र की बात पर ध्यान देते हैं। इसका उपाय अब आप ही कर सकते हैं !

भाइयो ! आपके प्रति मेरे हृदय में लेश-मात्र भी द्वेष नहीं है। द्वेष होता तो आपके हित की बात ही क्यों करता। इसके विरुद्ध समाज की अवस्था देखकर मुझे करुणा आती है। उसी से प्रेरित होकर मैं आपकी बात दीवान साहब से कहता हूँ।

श्रावक—आपने महान् उपकार किया !

आपकी आँख में थोड़ी-सी खराबी हो जाती है तो आप डाक्टर
ुलाते हैं। उसे फीस भी देते हैं और उसका उपकार भी मानते
र आप मूल को भूल जाते हैं। थोड़ा-सा उपकार करने वाले
ार इतना मान-सम्मान करें और मूल वस्तु बनाने वाली प्रकृति
ख भी पर्वा न करें, यह कितनी बुरी बात है? अगर आप
के नियमों को मानपूर्वक पालन करेंगे तो आपको किसी प्रकार
ष्ट न होगा और सर्वत्र शान्ति का संचार होगा।

मित्रो! मैंने आपसे स्त्री-शिक्षा और स्त्री-स्वातन्त्र्य के सम्बन्ध
ा है, इसका मतलब आप कुशिक्षा या स्वच्छन्दता न समझें,
ा जातीय-जीवन नष्ट-भ्रष्ट और कलंकित होता है। आप उन्हें
ाक नियम के अनुसार शिक्षित बनाकर स्वतन्त्र बनावें। अगर
ऐसा न करेंगे तो समझ लीजिए कि आप प्रकृति के नियमों की
लना करते हैं। प्रकृति की अवहेलना करने वालों का गौरवपूर्ण
त्व रहना बहुत कठिन है।

बहुत से भाई प्राकृतिक नियमों से बिलकुल अनभिज्ञ हैं। वे
ागत रूढ़ि को ही प्राकृतिक नियम मान रहे हैं, जैसे घूंघट।
कोई प्राकृतिक नियम नहीं है और न अनादि काल से चली
रथा है। भारतवर्ष में एक समय ऐसा आया था जब स्त्रियों के
घट निकालना अनिवार्य हो गया था। इस प्रकार विशेष
ाति उत्पन्न होने पर घूंघट उपादेय था, पर अब उसकी आव-
ा नहीं है। घूंघट अब निरुपयोगी और स्वास्थ्य को हानिकर
ास्त्रों में ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं जिनसे ज्ञात
ा काल में स्त्रियाँ घूंघट नहीं निकालती थीं।

मंत्रियों को आवश्यक सूचना देकर जिस समय राजा दशरथ सर्व-प्रथम कैकेयी के महल में गये, सहसा कैकेयी का विकराल रूप देखकर सहम उठे। जो रानी मेरे लिये सदा सिंगार किये करती थी, महल के द्वार पर पैर धरते ही मुस्कराती हुई सामने आजाती थी और हाथ पकड़ कर मुझे भीतर ले जाती थी, आज उसने यह विकराल रूप क्यों धारण किया है ? आज वह आँख उठाकर भी मेरी ओर नहीं देखती। केश बिखरे हुए हैं। कपड़े मैले-कुचैले और और अस्तव्यस्त हैं। मुंह उतरा हुआ, होठों पर पपड़ी जमी हुई और नाक से दीर्घश्वास ! यह सब क्या मामला है ?

राजा ने डरते-डरते उसके शरीर को हाथ लगा कर पूछा— प्रिये ! आज तुम नाराज़ क्यों हो ? तुम्हारी यह हालत क्यों है ? मैं राम की शपथ पूर्वक कहता हूँ—'जो तुम चाहोगी, वही होगा।'

अब तक कैकेयी चुप थी। 'राम' शब्द राजा के मुंह से सुनते ही सर्पिणी-सी फुंकार कर बोली—मैं और कुछन हीं चाहती। आपने पहले दो वचन माँगने को कहे थे, आज उन्हें पूरा कर दीजिए।

दशरथ—अवश्य, बोलो क्या चाहती हो ?

कैकेयी—पहले अच्छी तरह सोच लीजिए, फिर हाँ भरिये।

दशरथ—प्रिये ! सोच लिया है। माँगो।

कैकेयी—फिर नाहीं तो न कर जायगे ?

[illegible] रघुकुल की मर्यादा के विरु[illegible]

भरत भी मुझे 'माँ' नहीं कहता तो राम मुझे कैसे माता मानेगा! मैंने उसके लिये क्या कसर छोड़ी है? फिर भी राम मेरा विनीत बेटा है। वह अपनी माता को माफ कर देगा।

इस प्रकार अपने आपको धिक्कार कर कैकेयी ने भरत से कहा- 'मुझे रामचन्द्र से मिला दो। मैं भूली हुई थी। मैंने घोर पाप किया है। मेरी बुद्धि भ्रष्ट होगई थी। राम को देखे बिना मेरा जीवन कठिन हो जायगा। अगर तुमने राम से मुझे न मिलाया तो मैं प्राण त्याग दूंगी।

पहले तो भरत ने साफ इन्कार कर दिया, पर बाद में यह जान कर कि माता का अहंकार चूर-चूर हो गया है और वह सच्चे हृदय से पश्चात्ताप कर रही हैं, रामचन्द्र के पास लेजाना स्वीकार किया।

भरत चित्रकूट पहुँचे। कैकेयी मारे लज्जा के राम के सामने न जा सकी। वह एक वृक्ष की आड़ में खड़ी हो गई। उसकी दोनों आँखों से आँसुओं की धारा प्रवाहित हो रही थी। वह मन ही मन सोचने लगी—बेटा राम! क्या अब मेरा अपराध क्षमा नहीं किया जा सकता? क्या तुम मेरा मुंह भी देखना पसन्द न करोगे? मैं तुम से मिलने आई हूँ, पर सामने आने का साहस नहीं होता। राम! क्या इस अपराधिनी माता को दर्शन न दोगे? मैं जानती हूँ, कि हाय! मैंने अपनी लाडली बहू जानकी को अपने हाथ से छाल के वस्त्र पहना कर वन की ओर रवाना किया है। इससे बढ़कर निठुरता और कोई क्या कर सकता है?

रामचन्द्र माता कैकयी का विलाप सुन कर घूमते घूमते उसके पास जा खड़े हुए और 'बड़े मातरम्' कह उसके पैरों में गिर पड़े।

विपत्ति के साथ संघर्ष करके पुरुष महापुरुष बनता है। विपत्ति सोई मानवीय शक्तियों को जगाती है। विपत्ति मनुष्य के ओज पुरुषार्थ की, धैर्य की और साहस की कसौटी है। विपत्ति सफलता सखी है। जो महाप्राण पुरुष विपत्ति को सहर्ष अङ्गीकार करता उसी को सफलता प्राप्त होती है। जब तक मनुष्य विपत्ति का नहीं बनता तब तक उसका व्यक्तित्व पूर्णरूपेण पुष्ट नहीं होता। तक यहाँ, इतिहास बतलाता है कि मनुष्य की सम्पूर्ण महिमा का विपत्ति को है। रामचन्द्र वनवास की विपत्ति न भोगते और महलों में निवास करते हुए सम्पत्ति की गोद में क्रीड़ा करते रहते कौन उनकी रामायण बनाने बैठता ?

कैकेयी ने रामचन्द्र से कहा—वत्स, अयोध्या लौट चलो राज्यभार अपने सिर पर ले लो।

राम—माताजी, इस समय अयोध्या लौटना, अयोध्या त्याग के आदर्श को देश निकाला देना होगा। जहाँ त्याग का आद न होगा वहाँ शान्ति नहीं रह सकती।

कैकेयी और राम में बहुत देर तक इसी प्रकार की बातें होती रहीं। राम अपने संकल्प पर दृढ़ थे और कैकेयी उन्हें मनाने व्यस्त थी। एक ओर माता की नाराजी और दूसरी ओर आदर्श हनन। तिस पर मुसीबत यह थी कि भरत राज्य स्वीकार न करते थे जटिल समस्या थी। वह कैसे हल हो ?

इतने में सीता को युक्ति सूझी। राम से कहा—नाथ, भरत राज्य स्वीकार न करेंगे तो अराजकता फैलना अवश्यभावी है। इस नष्ट को टालने के लिए अगर आप अपने सिर पर राज्यभार लेकर भरत को सौंप दें तो क्या हानि है ? आपका दिया हुआ राज्य

वह दृढ़तापूर्वक यह मानने लगा था कि जो कुछ हो
...नी के कर्म का ही फल है।

आत्मा को कर्त्ता मानने वाले भारत में और भी बहुत
नायक हो गये हैं। गीता में श्रीकृष्ण ने अर्जुन को ऐसा ही
दिया था—

> उद्धरेदात्मनात्मानं, नात्मानमवसादयेत्।
> आत्मैवात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥

अर्थात्—हे अर्जुन! अपने आत्माके द्वारा ही आत्मा का उद्
करो। आत्मा ही अपना बन्धु और आत्मा ही अपना रिपु है।

गीता के इस उद्धरण से आप लोग समझ गये होंगे कि महावी
प्रभु के उपदेश में और श्रीकृष्ण के उपदेश में कितनी समानता है
'अप्पा कत्ता विकत्ता य' का उपदेश 'उद्धरेदात्मनात्मानं' से बिलकुल
मिलता-जुलता है।

इस सिद्धान्त के विरुद्ध होनहार को कर्त्ता मानने पर हमारे
सामने अनेक प्रश्न उपस्थित हो जाते हैं, जिनका निराकरण नहीं
[illegible]

तब वह पढ़-लिख कर विद्वान् बनता है। अगर शिक्षक और शिष्य दोनों उद्योग करना छोड़ दें और होनहार के भरोसे बैठे रहें तो परिणाम क्या आयगा, यह समझने में कठिनाई नहीं हो सकती। इससे यही परिणाम निकलता है कि कर्त्ता के बिना कर्म होना शक्य नहीं है। मिट्टी में घड़ा बन जाने की शक्ति अवश्य है, पर कुंभार के बिना घड़ा बन नहीं सकता। भवितव्यता पर निर्भर रह कर अगर चाहें चूल्हे के पास आटा रख दें तो रोटी बन सकती है? मैं समझता हूँ, भवितव्यता के भरोसे बैठ कर सारा संसार यदि चार दिन के लिए अपना अपना उद्योग छोड़ दे तो संसार की ऐसी दुर्गति हो कि जिसका ठिकाना न रहे। संसार में घोर हाहाकार मच जायगा। इस प्रकार भवितव्यता का सिद्धान्त अपने आपमें पोच ही नहीं है वरन वह मानवसमाज की उद्योगशीलता में बड़ा रोड़ा है और लोगों को निकम्मा एवं आलसी बनाने वाला है। यही सब सोच कर सकडाल ने भगवान महावीर का सिद्धान्त भक्तिपूर्वक स्वीकार कर लिया।

ज्यों ही गोशालक सकडाल के पास पहुँचा, सकडाल ने समझ लिया कि मेरे यह पूर्वगुरु फिर अपना सिद्धान्त मनवाने आये हैं। सकडाल ने गोशालक की तरफ से मुंह फेर लिया। उसके ललाट पर बल पड़ गये। गोशालक मूर्ख तो था नहीं। वह बड़ा बुद्धिमान और विचक्षण था। वह सकडाल का अभिप्राय ताड़ गया।

मित्रो! यह विचारणीय है कि गोशालक सकडाल का पूर्वगुरु था [illegible] अपने पुराने गुरु के प्रति ऐसा व्यवहार क्यों किया? [illegible] यह है कि सकडाल को विश्वास हो गया था कि [illegible] सिद्धान्त [illegible] और जगत् के लिए अकल्याणकारी है [illegible] के प्रति विनय-भक्ति प्रदर्शित करना उसके सिद्धान्त

को मान देना है। इससे बड़े अनर्थ की संभावना रहती है। गोशालक के प्रति सकडाल के इस व्यवहार का यही कारण था। इसी का नाम असहयोग है।

जिस प्रकार धर्म-सिद्धान्त के लिए मनुष्य को असहयोग करना आवश्यक है, उसी प्रकार लौकिक नीतिमय व्यवहारों में अगर राज्य-शासन की ओर से अन्याय मिलता हो तो ऐसी दशा में राज्यभक्ति-युक्त सविनय असहकार—असहयोग—करना प्रजा का मुख्य धर्म है। वह प्रजा नपुंसक है जो चुपचाप अन्याय को सहन कर लेती है और उसके विरुद्ध चूं तक नहीं करती। ऐसी प्रजा अपना ही नाश नहीं करती परन्तु उस राजा के नाश का भी हेतु बन जाती है, जिस की वह प्रजा है। जिस प्रजा में अन्याय के पूर्ण प्रतीकार का सामर्थ्य नहीं है उसे कम से कम इतना तो प्रकट कर ही देना चाहिए कि अमुक कानून या कार्य हमारे लिए हितकर नहीं है और हम उसे नापसंद करते हैं।

प्रजा को बिगाड़ना राजनीति नहीं है। राजा वही कहलाता है जो प्रजा की सुव्यवस्था करे। जो राजा प्रजा की सुव्यवस्था नहीं करता और प्रजा को कुव्यसनों में डालता है, जो अपनी आमदनी बढ़ाने के लिए आबकारी जैसे प्रजा के स्वास्थ्य को नष्ट करने वाले विभाग स्थापित करता है [illegible] चुपचाप बैठी रहती है तो समझना चाहिए वह प्रजा [illegible] है

प्रजा के हित [illegible] रोकने वाला राजा, राजा [illegible]

राजा के भय [illegible]

अपमान करना है। धर्मवीर पुरुष राजा के अपकारक कानून को ही नहीं ठुकराता, पर राजा और प्रजा के किसी खास भाग द्वारा भी अगर कोई ऐसा कानून बनाया गया हो तो उसे भी उखाड़ फेंकने की हिम्मत रखता है।

कौणिक राजा द्वारा हार और हाथी लेने पर चेड़ा-श्रावक ने क्या किया था, जरा इस पर दृष्टि डालिए। उसने राजा और राज्य के विरुद्ध इस अन्याय का प्रतीकार करने के लिए लड़ाई छेड़ दी। धर्मवीर थोथी शान्ति पसन्द नहीं करते। वे जानते हैं, थोथी शान्ति से सत्य का खून होता है।

प्रायः आजकल के श्रावक थोथी शान्ति के हिमायती होते हैं। 'अरे कहीं लड़ाई हो जायगी, दंगा मच जायगा, लोग अपने विरुद्ध हो जाएँगे, ऐसा हो जायगा, वैसा हो जायगा, हमें तो चुप्पी साध लेना चाहिए, बिगाड़ हो तो अपना क्या, सुधार हो तो अपना क्या,' इत्यादि कहा करते हैं। यह उनकी वास्तविक शान्तिप्रियता नहीं है। यह शान्ति का ढोंग है और अन्दर धधकती हुई आग फैलने में सहायक होता है।

सम्भव है, आप मेरी बात का रहस्य न समझे हों। यदि ऐसा ही हो तो यह दोष आपका नहीं मेरा है, क्योंकि मेरा तपस्या अब तक इतना निर्बल है कि, मैं आपको समझाने में असमर्थ हो जाता हूँ।

[illegible] आशय यह है कि मनुष्य को हर हालत में सत्य का [illegible] करना चाहिए। सत्य का पालन न करने वाले के कार्य चाहे [illegible] के समान हैं। सत्य का पालन करने के

लिए आपको चाहिए कि अगर मुझ में कोई पोल किसी नजर आती हो तो मुझ से अलग रहें और मुझे चेतावें। ऐसा न करने से साधु भी असाधु बन जाता है। सत्य के बिना कभी कोई वस्तु टिक नहीं सकती। अरणक के जहाज में हजारों आदमी बैठे थे। देवता ने कहा—'तू असत्य बोल, नहीं तो जहाज उलटता है।' पर अरणक अटल रहा। वह असत्य न बोला। अगर अरणक असत्य बोलता तो जहाज टिक सकता था? सत्य ही के प्रभाव से जहाज बचा था।

सारी राजगृही नगरी सुदर्शन पर हँसती थी, पर सुदर्शन ने किसी की परवाह न की। उसे सत्य पर भरोसा था और सचमुच ही सत्य की विजय हुई। सुदर्शन पर हँसने वालों को अपने ही ऊपर हँसने का अवसर आते देर न लगी।

कौरवों और पाण्डवों के युद्ध में महाविचक्षण भीष्म और द्रोण आदि दुर्योधन की तरफ थे। वे जानते थे कि दुर्योधन का पक्ष न्याय-संगत नहीं है और युधिष्ठिर न्याय-पक्ष पर है। पर वे लोग दुर्योधन का अन्न खाते थे, दुर्योधन के विरुद्ध काम करना अनुचित समझते थे। फिर भी उन्होंने अपने हृदय के आव [illegible]
[illegible]

[illegible]

और देश को इतनी भीषण हानि पहुँची कि सदियाँ व्यतीत होजाने पर भी वह सँभल न सका।

कौन-सा कार्य न्यायसंगत है और कौन-सा अन्याययुक्त है, किस कानून से प्रजा के कल्याण की संभावना है और किसमें अकल्याण की, यह बात प्रत्येक मनुष्य नहीं समझ सकता। समझदारों को चाहिए कि वे प्रजा को इस बात का ज्ञान करावें। जो व्यक्ति समय-समय पर प्रजा को अपनी भलाई-बुराई का ज्ञान कराते रहते हैं, और बुराई से हटाकर भलाई की ओर ले जाते हैं, जो जनता का पथ-प्रदर्शन करते हुए स्वयं आगे-आगे इस पथ पर चलते हैं, उन्हें जनता अपना पूज्य नेता मानती है और उन्हें श्रेष्ठ पुरुष मान कर उनके पीछे-पीछे चलती है। गीता में कहा है—

> यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः ।
> स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्त्तते ॥

मित्रो ! सकडाल, जाति का कुंभार होने पर भी श्रेष्ठ पुरुषों में गिना जाता था। अगर वह गोशालक के सिद्धान्तों से असहयोग न करता तो दूसरे भोले लोग इस सिद्धान्त के आगे सिर झुका देते और अकर्मण्य बन जाते।

आप स्वयं विचार कीजिए कि कर्त्ता को भूल जाने से क्या काम चल सकता है ? सिर्फ होनहार के भरोसे बैठे रहने से कोई काम बन सकता है ? मैं अभी कह चुका हूँ कि होनहार के भरोसे रोटी बनाने का काम दो चार रोज के लिए भी अगर यह बहिनें स्थगित कर दें तो कैसी स्थिति उत्पन्न हो जाय ? होनहार पर निर्भर रहकर अगर पुरुष एक दिन भी वस्त्र धारण न करें तो कैसी बीते ? नगा रहने के

लिए किसे दंड दिया जा सकता है ? जब होनहार को ही स्वीकार कर लिया तो किसी भी अपराध का कर्त्ता कोई मनुष्य नहीं ठहरता।

नियतिवादी के सामने कोई डंडा लेकर खड़ा हो जाय और उससे पूछे—'बताओ, यह डंडा तुम्हारे सिर पर पड़ेगा या कमर पर ? वह क्या उत्तर देगा ? यही कि जहाँ तुम मारना चाहोगे वहाँ ! इसमें क्या यह मतलब न निकला कि नियति (होनहार) कर्त्ता नहीं है। जहाँ मारने वाला मारना चाहेगा वहीं डंडा पड़ेगा, इससे सिद्ध हुआ कि होनहार मारने वाले के हाथ में है।

आप लोग महावीर के शिष्य होकर भी यहाँ तक कहते रहोगे कि—'हम क्या करें ? हमारे हाथ में क्या है ? जो कुछ होना है वह तो होकर ही रहेगा।' कभी आप काल पर उत्तरदायित्व थोप देते हैं—'क्या करें, समय ही ऐसा आ गया है !' और कभी स्वभाव का रोना रोने लगते हैं—'लाचारी है, इनका स्वभाव ही ऐसा पड़ गया है !' खेद ! आप महावीर के अनुयायी होकर जड़ पर जवाबदारी डालते हैं ! भूल होती है आपकी और जवाबदारी डाली जाती है जड़ पर। यह कैसी उल्टी समझ है ? आप यह क्यों नहीं कहते कि दोष हमारा है, हम स्वयं ऐसे हैं ?

जो मनुष्य अपना दोष स्वीकार कर लेता है उसकी आत्मा [illegible]

कौन रोक सकता है? अगर धान्य नहीं उपजता है तो मेरे प्रयत्न करने पर भी नहीं उपजेगा। दोनों हालतों में मेरा प्रयत्न व्यर्थ है। जैसी होनहार होगी, वही होगा। तब काहे को अपने शरीर का पसीना बहाऊँ?

इसी प्रकार जुलाहा भी होनहारवादी बन कर बैठ रहे और जगत के समस्त कार्यकर्त्ता यही सोचने लगें तो जगत के व्यवहार कितनी देर तक जारी रह सकेंगे? कहिए, इस सिद्धान्त से संसार का काम चल सकता है?

'नहीं चल सकता!'

इस सिद्धान्त को मान कर जनता कहीं अकर्मण्य न बन जाय यह सोचकर सकडाल को गोशालक के साथ असहयोग करना पड़ा। महावीर का सिद्धान्त उसे रुचिकर और हितकर प्रतीत हुआ। महावीर पुरुषार्थ वादी थे। वे आत्मा को कर्त्ता मानते थे।

मित्रो! सकडाल ने अन्याय से असहयोग कर दिखाया। सकडाल जाति का कुम्हार था। मिट्टी के बर्तनों की ५०० दुकानों का मालिक था। तीन करोड़ स्वर्ण मोहरों का अधिपति और दस हजार गायों का प्रतिपालक था। वह सदा नीतिपूर्ण व्यवहार का ध्यान रखता था।

[illegible] असहयोग करके भी सकडाल ने अपनी [illegible] बात पर वह डटा रहा। इसका [illegible] गोशालक का अनादर। [illegible] का [illegible] अवज्ञा नहीं [illegible]

करता। किसी व्यक्ति के प्रति उसके हृदय में घृणा या द्वेष का भाव नहीं होता। असहयोगी अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगाकर अन्याय का प्रतीकार करता है और अन्यायी को सहयोग न देना भी अन्याय के प्रतीकार के अनेक रूपों में से एक रूप है। असहयोग प्रत्येक मनुष्य का न्यायसंगत अधिकार है, यदि उसकी सब शर्तें यथोचित रूप में पालन की जाएँ।

सकडाल के असहयोग के कारण गोशालक को निराश होना पड़ा। वह भगवान महावीर के सिद्धान्त पर अटल और अचल रहा।

यहाँ बैठे हुए भाइयों में शायद ही कोई होनहारवादी होगा। पर ऐसे बहुत से लोग मिलेंगे जो कहा करते हैं—भगवान करते हैं सो होता है। उनकी मान्यता यह है कि हमारे किये कुछ नहीं होता। हम नाचीज़ हैं। हम भगवान के हाथ की कठपुतली हैं। वह जैसा नचाता है, हमें नाचना पड़ता है।

मैं चाहता हूँ कि आप [illegible] दूर कर दें। [illegible]
[illegible]

कर्मों को कर्मफल देने की व्यवस्था ही करता है। यह सब मान्य करनी है।

जैन भाई भी अन्धविश्वास से दूर नहीं हैं। वे भी 'क्या करें महाराज, कर्मों की गति!' कह कर अपना सारा दोष कर्मों के सिर मढ़ देते हैं, मानो कर्म बिना किये हुए ही उन्हें फल देने आ टूटे हैं। स्वयं कुछ करने वाले ही नहीं हैं।

मित्रो! आज गोशाला दिखाई नहीं देता, पर उसका उपदेश गोशालक का सूक्ष्म रूप धारण करके आपके समाज में घूम रहा है। उसके कारण आप अपनी उद्योगशीलता को भूल रहे हैं। आपने अपनी क्षमता की ओर से दृष्टि फेरली है। आप अपने आपको अकिंचित्कर मान बैठे हैं। यह दीनता का भाव दूर करो। अपनी असीम शक्ति को पहचानो। सर्व बोधक हो तो अपने को कर्ता—कार्यक्षम मान कर कल्याणमार्ग के पथिक बनो।

किसी भी दूसरे की शक्ति पर निर्भर न बनो। समझ लो, तुम्हारी एक भुजा में स्वर्ग है, दूसरी में नरक है। तुम्हारी एक भुजा में अनन्त संसार है और दूसरी भुजा में अनन्त सत्यमयी मुक्ति है। तुम्हारी एक [illegible] में सारे पाप हैं और दूसरी [illegible] में पुण्य का अक्षय भंडार भरा है। तुम विश्व की समस्त शक्तियों के स्वामी हो। कोई भी शक्ति [illegible] नहीं है। तुम भाग्य के अधीन नहीं हो, बल्कि [illegible] भाग्य का [illegible] तुम्हारा पुरुषार्थ रूप भाग्य बन कर [illegible] सहायक होगा। इस लिए हे मानव [illegible] अपने स्वरूप को समझ [illegible] तू सब कुछ है, दूसरा

कुछ नहीं है। तेरी क्षमता अगाध है। तेरी शक्ति असीम है। तू समर्थ है। तू विधाता है। तू ब्रह्मा है। तू शंकर है। तू महावीर है। तू बुद्ध है।

भीनासर
२०—११—२७.

आशीर्वाद

[सर मनु भाई मेहता, जो बड़ौदा स्टेट और बीकानेर स्टेट के प्रधानमन्त्री पद पर रहकर अच्छी ख्याति प्राप्त कर चुके हैं और जो आजकल ग्वालियर रियासत के प्रधानमन्त्री पद को सुशोभित कर रहे हैं, आचार्य महाराज के अनुरागियों में से एक हैं। आचार्य महाराज के उपदेशों से प्रभावित होकर आप उनके अनुरागी हुए। आचार्य महाराज जब बीकानेर या आस-पास-भीनासर आदि विराजमान होते थे, तब सर मेहता अक्सर उपदेश श्रवण का लाभ लेते थे।

लन्दन में हुई पहली गोलमेज कान्फ्रेंस में सम्मिलित होने के लिए सर मनु भाई जब विलायत जाने लगे तब आप आचार्य महाराज के दर्शनार्थ आये थे। उस समय [illegible] महाराज ने [illegible] प्रभावशाली उपदेश [illegible] था वह [illegible] है। उसका सार यहाँ दिया जाता है

पर्जन्य इव भूतानामाधारः पृथिवीपतिः ।
विकलेऽपि हि पर्जन्ये जीव्यते न तु भूपतौ ॥
राजाश्रय जगतो वृद्धहेतुर्दुःखाभिमंगदः ।
नयनानन्दजननः, शशाङ्क इव वारिधेः ॥

इन काव्यों का अर्थ गम्भीर है। इनकी विशद व्याख्या करने का समय नहीं है। अतएव संक्षेप में यही समझ लीजिए कि राजाओं द्वारा धर्म की रक्षा हुई है। राजा द्वारा देश को स्वतन्त्रता की रक्षा होती है, प्रजा में शान्ति, सुव्यवस्था और अमन-चैन कायम किया जाता है, तभी धर्म की प्रवृत्ति होती है। जहाँ परतन्त्रता है, जहाँ अराजकता है और जहाँ परतन्त्रताजन्य हाहाकार मचा होता है, वहाँ धर्म को कौन पूछता है?

हिन्दू-शास्त्र में धर्म की रक्षा का रहस्य संक्षेप में कहा है :—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत !
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥

हिन्दू शास्त्रों के अनुसार, जब अधर्म बढ़ जाता है, अधर्म के बढ़ जाने से धर्म का ह्रास हो जाता है, तब धर्म की रक्षा के लिए ईश्वर अवतार लेता है। तात्पर्य यह है कि किसी महान् शक्ति के सहयोग बिना धर्म की रक्षा नहीं होती। एक प्रसिद्ध जैनाचार्य ने भी कहा है —

न धर्मो धार्मिकैर्विना

अर्थात् [illegible] की प्रतिष्ठा नहीं हो सकती।

[illegible] ध्यान के योग्य है, मगर [illegible] है, व यहीं कह रहे हैं। इसी

कारण सर मनु भाई वृद्धावस्था में भी अपने अनुभव को उस कार्य में लगा रहे हैं, जिसके लिए आप विलायत जा रहे हैं। सर मेहता को धर्म की रक्षा करने का यह अपूर्व अवसर मिला है।

सर मनु भाई यद्यपि अनभिज्ञ नहीं हैं, तथापि मैं इस अवसर पर खास तौर पर यह स्मरण करा देना चाहता हूँ कि धर्म को लक्ष्य बनाकर जो निर्णय किया जाता है वही निर्णय जगत् के लिए आशीर्वाद रूप हो सकता है। धर्म की व्याख्या ही यह है कि वह मंगलमय-कल्याणकारी हो। 'धम्मो मंगलमुक्किट्ठं।' अर्थात् जो उत्कृष्ट मंगलकारी हो वही धर्म है।

कोई यह न सोचे कि धर्म किसी व्यक्ति का ही हो सकता है। राउण्ड टेबिल कॉन्फ्रेंस में, जिसके लिए मेहताजी जा रहे हैं, धर्म का प्रश्न ही क्या है? मैं पहले ही कह चुका हूँ कि गुलाम और अत्याचार-पीड़ित प्रजा में वास्तविक धर्म का विकास नहीं होता, इसलिए धार्मिक-विकास के लिए स्वातन्त्र्य अनिवार्य है और इसी समस्या का समाधान करने के लिए लन्दन में कान्फ्रेंस की जा रही है।

श्रेष्ठ पुरुष शान्तिपूर्वक विचार करके सब की शान्ति का उपाय करते हैं।

जिस निर्णय से बहुजन-समाज का कल्याण होता है, वही धर्म का निर्णय कहलाता है। [illegible] अर्थात् श्रेष्ठ पुरुष जिस [illegible] करते हैं वह निर्णय सभी के [illegible] [illegible] सामने रखकर [illegible] है और जिससे सब [illegible]

व्यवस्था की रचना करने वालों को ईश्वर का दर्जा दिया गया है। जन-कल्याण के लिए नीति-मर्यादा का विधान करने वालों को अगर 'विधाता' या 'मनु' का पद दिया जाय तो इसमें अनौचित्य भी क्या है?

सर मनु भाई यद्यपि स्वयं विवेकशील हैं, बुद्धिमान हैं, तथापि हम परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि उन्हें ऐसी सद्बुद्धि प्राप्त हो, जिससे वे सत्य के पथ पर डटे रहें। नाजुक से नाजुक प्रसंग उपस्थित होने पर भी वे सत्य से इञ्च-मात्र भी विचलित न हों। सत्य एक ईश्वरीय शक्ति है जो विजयिनी हुए बिना नहीं रह सकती। चाहे सारा संसार उलट-पलट हो जाय मगर सत्य अटल रहेगा। सत्य को कोई बदल नहीं सकता। प्रत्येक मनुष्य की जीवन-लीला एक दिन समाप्त हो जायगी, ऐश्वर्य बिखर जायगा, परन्तु सत्य की सेवा के लिए किया गया उत्सर्ग अमर रहेगा। सत्य पर अटल रहने वालों का वैभव ही स्थायी रहेगा।

साधु के नाते मैं सर मनु भाई को यही उपदेश देना चाहता हूँ कि दूसरे के असत्यमय विचारों के प्रभाव से दूर रह कर, शुद्ध मस्तिष्क से सत्य विचार करना और चाहे विश्व की समस्त शक्ति संगठित होकर विरोध में खड़ी हो तब भी अपने सत्य को न छोड़ना। किसी के असत्य विचारों की परछाई अपने ऊपर न पड़ने देना। शास्त्रानुसार और अपने अन्तरतर के संकेत के अनुसार जो सत्य है, उसी को विजयी बनाना बुद्धिमान का कर्त्तव्य है और सत्य की विजय में ही सदा कल्याण है।

इस प्रकार कार्य में बुद्धि को स्वतन्त्र रक्खा जाता है या परतंत्र ? [illegible] परतन्त्र बुद्धि से जो काम किया जाता

है उसके विषय में, थोड़े से शब्दों में कुछ नहीं कहा जा सकता। तथापि इस ओर संकेत-सा कर देना आवश्यक है।

यद्यपि कार्य की सहायता के लिए प्रत्येक व्यक्ति कानून-कायदा बहुजन-समाज आदि का आश्रय लेता है, लेकिन यह सब है परतंत्रता। प्रत्येक व्यक्ति ईश्वर का पुत्र है। प्रत्येक व्यक्ति में बुद्धि है और प्रत्येक की बुद्धि में जागृति है। जिसने सांसारिक लाभ के लोभ से बुद्धि की जागृति पर पर्दा डाल दिया है उसकी बुद्धि की शक्ति अवश्य छिप गई है, मगर जिसने स्वार्थ का पर्दा अपनी बुद्धि पर से हटा दिया है, वह तुच्छ से तुच्छ आत्मा भी महान बन गया है। इसके लिए अनेक प्रमाण मौजूद हैं। इसी निःस्वार्थ विचार-शक्ति के प्रभाव से वाल्मीकि और प्रभव चोर महर्षि के पद पर पहुँचे थे। इस लिए स्वार्थ के किवाड़ लगा कर उस विचारशक्ति को रोक देना उचित नहीं है। अपनी बुद्धि को अपनी विचार-शक्ति को सब प्रकार के विकारों से दूर रख कर जो निर्णय किया जाता है वही उत्तम होता है।

जब आदमी को अपनी स्वतन्त्र बुद्धि से काम करना है तो उसका लक्ष्य क्या होना चाहिए? उसका लक्ष्य ऐसा होना चाहिए जिसे आदर्श मान कर सब लोग अपना काम कर सकें। जहाज़ में बैठे हुए लोगों की दृष्टि ध्रुव पर रहती है, उसी प्रकार ऐसे लोगों को भी अपना लक्ष्यबिन्दु ऐसा बना लेना चाहिए। उस लक्ष्यबिन्दु के सम्बन्ध में भी कुछ संकेत कर देना उचित प्रतीत होता है।

जीवन-व्यवहार के साधारण कार्य, जैसे खाना-पीना, चलना-फिरना आदि ज्ञानी भी करते हैं और अज्ञानी भी करते हैं। कार्यों में

इस प्रकार समानता होने पर भी बड़ा भेद रहता है। अज्ञानी पुरुष अज्ञान-पूर्वक, बिना किसी विशेष उद्देश्य के कार्य करता है जबकि ज्ञानी पुरुष जीवन का छोटे-से-छोटा और बड़े से बड़ा व्यवहार गम्भीर ध्येय से निष्काम भावना से, कामनाहीन होकर यज्ञ के लिए करता है। शास्त्रकारों ने यज्ञ के लिए काम करना पाप नहीं माना है। मगर प्रश्न यह है कि वास्तविक यज्ञ किसे कहना चाहिए? लोगों ने नाना प्रकार के हिंसात्मक कृत्य करने और अग्नि में घी होमने को ही यज्ञ मान लिया है। मगर यज्ञ के सम्बन्ध में गीता में कहा है :—

> द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा, योगयज्ञास्तथाऽपरे ।
> स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च, यतयः संशितव्रताः ॥
>
> —अ० ४ श्लो० २८

यज्ञ अनेक प्रकार के होते हैं। अगर किसी को द्रव्य-यज्ञ करना है तो धन पर से अपनी सत्ता उठा ले और कहे 'इदं न मम।' अर्थात् यह मेरा नहीं है। बस, यज्ञ हो गया।

संसार में जो गड़बड़ी मची हुई है उसका मूल कारण संग्रह-बुद्धि है। संग्रह-बुद्धि से संग्रहशीलता उत्पन्न हुई और संग्रहशीलता ने समाज में वैषम्य का विष पैदा कर दिया। इस वैषम्य ने आज समाज की शान्ति का सर्वनाश कर दिया है। इस विषमता का एक मात्र उपाय है—यज्ञ करना। अगर लोग अपने द्रव्य का यज्ञ कर डालें 'इदं न मम' कह कर उसका उत्सर्ग कर दें तो सारा गड़बड़ [illegible] जायगा।

द्रव्ययज्ञ के [illegible] यज्ञ आता है। तप करना उतना कठिन [illegible] करना कठिन है। बहुत-से लोग हैं जो तप करते हैं परन्तु [illegible] अमुक फल प्राप्त करने की आकांक्षा

बनी रहती है। इस प्रकार आकांक्षा वाला तप एक प्रकार का सौदा बन जाता है। वह तप यज्ञ रूप नहीं बन पाता। तप करके उससे फल की कामना न करे और 'इदं न मम' कह कर उसका यज्ञ दे, तो तप अधिक फलदायक होता है।

मैं सर मनु भाई मेहता को सम्मति देता हूँ कि वे अपने प्रधानमन्त्री के अधिकारों का भी यज्ञ कर दें।

मेरा तात्पर्य यह है कि अगर सच्चे कल्याण की चाहना है तो सब वस्तुओं पर से अपना ममत्व हटा लो। 'यह मेरा है' इस बुद्धि से ही पाप की उत्पत्ति होती है। इस दुर्बुद्धि के कारण ही लोग ईश्वर का अस्तित्व भूले हुए हैं। 'इद न मम' कह कर अपने सर्वस्व का यज्ञ कर देने से अहंकार का विलय हो जायगा और आत्मा में अपूर्व आभा का उदय होगा।

वे योगी, जो यज्ञ नहीं करते, उपहास के पात्र बनते हैं। योगियो ! अपना किया हुआ स्वाध्याय, प्राप्त किया हुआ विविध [illegible] का ज्ञान और आचरित तप आदि समस्त अनुष्ठान ईश्वर के [illegible] अगर तुमने सभी कुछ ईश्वर को अर्पित कर [illegible] कामनाएँ तुम्हें [illegible] अपना सब मन रक्खो किसी [illegible]

गोल-मेज-कान्फ्रेंस में अपने सम्पूर्ण साहस का परिचय दें। मेरी हार्दिक भावना है कि सब प्राणी कल्याण के भाजन बनें।

अन्त में मेरा आशीर्वाद है कि आपकी भावना सदा धर्ममयी बनी रहे और धर्मभावना के द्वारा आप यशस्वी और पूर्ण सफल बनें।

卐 वाङ्-चयन 卐

अल्पारम्भ-महारम्भ

वैश्य का कर्त्तव्य संग्रह करना हो सकता है परन्तु वह संग्रह स्वार्थमय परिग्रह नहीं बन जाना चाहिए। स्वार्थमय परिग्रह देश को आबाद नहीं बर्बाद करता है। वैश्यों को न केवल समाज और देश की भलाई के लिए ही वरन अपनी आत्मिक उन्नति के लिए भी परिग्रह से बचना चाहिए। परिग्रह मात्र ममत्व भावना बढ़ाने वाला है। और वही आजादी (मोक्ष) को रोकता है। अतएव परिग्रह को बढ़ाने के बदले घटाने का प्रयत्न करना चाहिए। जीवन-निर्वाह के लिए [illegible] करना चाहिए और शेष [illegible] परिमाण नियत कर लेने [illegible] हानि [illegible]

एक विद्वान आविष्कारक ने बतलाया है कि प्रकृति उतना उत्पन्न करती है जितने से एक भी मनुष्य भूखा न मरे और नंगा न रहे। पर हाय ! आज लाखों मनुष्य भूख के मारे मर रहे हैं। उन्हें तन ढँकने को पूरा कपड़ा भी नसीब नहीं होता। मित्रो ! विचार करने से मालूम होगा कि इसका कारण लोगों की संग्रह-बुद्धि ही है। एक ओर अन्न के लिए तरसते हुए मनुष्य मर रहे हैं और दूसरी तरफ आवश्यकता न होने पर भी जीवनोपयोगी वस्तुओं का संग्रह किया जाता है ! क्या इससे यह बात सिद्ध नहीं होती कि स्वार्थी मनुष्य, मनुष्य के घात का कारण बन रहा है ?

कई लोग कहते हैं, साँप मनुष्य का शत्रु है, क्यों कि वह उसे काट कर उसकी जीवनलीला समाप्त कर देता है। सिंह मनुष्य का शत्रु है, वह उसे फाड़कर खा जाता है। रोग फैलकर मनुष्यों का संहार करता है इसलिए वह भी मनुष्य का शत्रु है।

इन बेचारों के जबान नहीं है, अतएव मनुष्य चाहें सो आक्षेप उन पर कर सकते हैं। अगर उन्हें अपनी सफाई पेश करने की योग्यता मिली होती तो वे निडर होकर तेजस्वी भाषा में कह सकते हैं कि—'मनुष्यो ' हम जितने क्रूर नहीं उतने क्रूर तुम हो। तुम्हारी क्रूरता के आगे हमारी क्रूरता किसी गिनती मे ही नहीं है। सर्प किसी को निष्कारण नहीं काटता। वह प्रायः आत्मरक्षा के उद्देश्य से ही काटता है। और जब काटता है तो मीठा जहर चढ़ता है और जिसे जहर चढ़ता है वह मस्ती के साथ प्राणविसर्जन करता है। उसे प्रकट रूप में कुछ भी कष्ट अनुभव नहीं होता। पर मनुष्य, मनुष्य को किस बुरी तरह मारता है ? सर्प और मनुष्य की तुलना करके देखो, फिर आप [illegible]

मित्रो! आदर्श वैश्य संसार की माता की तरह संग्रह करता है, जौंक की तरह नहीं। जो इस बात का ध्यान रखता है वह दयालु, करुणाशील और धर्मात्मा कहा जायगा, क्योंकि उसकी जीविका धर्म की जीविका है, अधर्म की नहीं

वैश्य को किस प्रकार की आजीविका करनी चाहिए, यह एक विचारणीय प्रश्न है। आजीविका दो प्रकार की होती है—मूल आजीविका और (२) उत्तर आजीविका। खेती करके अनाज या कपास उपजाना मूल आजीविका है और रुई, सूत या वस्त्र का व्यापार करना उत्तर आजीविका है।

आज कल मूल आजीविका के प्रति उचित आदरभाव दिखाई नहीं देता। लेकिन मूल आजीविका के बिना उत्तर आजीविका टिक नहीं सकती। आप लोग खेती नहीं करते पर खेती से पैदा हुई रुई और कुस्टा आदि का व्यापार करते हैं। अगर किसान खेती करना छोड़ दे तो आपका व्यापार किस आधार पर चलेगा? आपसे मिहनत का काम नहीं होता इसलिए आपने खेती करना महापाप का काम मान लिया है। मगर कभी यह भी विचार किया है कि तृष्णा की अधिकता किसमें है? जरा तुलना करके देखो कि खेती करने वालों ने कितनों को डुबाया है और दूसरे व्यापार करने वालों ने कितनों ? गरीब किसान इतना असत्यमय व्यवहार नहीं करता जितना ...र कहलाने वाले सेठ करते हैं। किसी किसान ने स्वार्थ से प्रेरित होकर किसी को डुबाया हो ऐसा आज तक नहीं सुना गया, किन्तु बड़े व्यापार करने वाले सेठों ने लोभवश दिवाला निकाल दिया और कइयों के पैसे हजम कर लिए।

हाथ फैलाने की जरूरत नहीं है। सारा संसार रूठ जाय तो भी उसका कुछ बिगाड़ नहीं हो सकता, मगर यदि खेती करने वाले रूठ जाएँ तो सब को नानी याद आने लगे। सर्वत्र त्राहि-त्राहि और हाय-हाय का घोर आर्त्तनाद सुनाई पड़ने लगे। इसी कारण कहा जाता है कि खेती दुनिया का प्राण है। खेती के बिना दुनिया में प्रलय मच सकता है।

ऐसी अवस्था में तुम्हें सत्य और न्याय का विचार करना चाहिए। खेती करने वालों से घृणा का व्यवहार न करके, उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करना चाहिए। सरल और सीधे किसानों का आदर करना चाहिए और उनसे जगत्कल्याण के लिए कष्ट सहने का सबक सीखना चाहिए।

मित्रो ! अब एक और प्रश्न मैं तुम्हारे सामने रखता हूँ। बताओ खेती करने में ज्यादा पाप है या जुआ खेलने में ? बोलिए, चुप मत रहिए।

श्रावक—ऊपर की दृष्टि से तो खेती का काम ज्यादा पाप का मालूम पड़ता है।

ठीक है। इस प्रकार कहने से मुझे मालूम हो जाता है कि आप किस वस्तु को किस रूप में समझ रहे हैं।

मित्रो ! ऊपर की दृष्टि से जुआ अल्प पाप गिना जाता है। इसमें किसी की हिंसा नहीं होती। केवल इधर की थैली उधर उठाकर रखनी पड़ती है। पर खेती में ? अरे बाप रे ! एक हल चलाने में न जाने कितने जीवों की हिंसा होती है ? यह कहना भी अत्युक्ति नहीं है कि खेती में छहों काय की हिंसा होती है।

जुआ हिंसाकारी है, जुए में असत्य भाषण होता है, जुआरी चोरी करने के लिए भी उद्यत हो जाता है। जुए से निश्चय ही मनुष्य दुःख का भागी होता है।

वास्तव में जुआरी प्राणियों पर दया नहीं करता। धर्मराज युधिष्ठिर ने जुए के जाल में फँस कर के ही द्रौपदी को दाव पर रख दिया था। जुआ धर्मराज की बुद्धि पर भी पर्दा डाल सकता है तो दूसरे साधारण मनुष्यों की बात ही क्या है?

जुआ और खेती के पाप की तुलना करते समय आप यह बात भी न भूल जाइए कि शास्त्रों में जुए को सात कुव्यसनों में गिना गया है, पर खेती करना कुव्यसन के अन्तर्गत नहीं है। श्रावक को सात कुव्यसनों का त्याग करना आवश्यक है। अगर जुए की अपेक्षा खेती में अधिक पाप होता तो सात कुव्यसनों की अपेक्षा खेती का पहले त्याग करना आवश्यक होता। परन्तु शास्त्र बतलाते हैं कि आनन्द जैसे धुरंधर श्रावक ने श्रावकधर्म धारण करने के पश्चात् भी खेती करने का त्याग नहीं किया था।

इस विवेचन से आप अल्प पाप और महापाप को समझ सकेंगे, फिर भी अधिक स्पष्टीकरण के लिए मैं कुछ उदाहरण आपके सामने रखता हूँ। इनसे कई बातों का निचोड़ निकल सकेगा।

[illegible] मर्यादा का पालन नहीं कर सकता। [illegible] में तो भाग में [illegible] मर्यादा के अनुसार [illegible] आरम्भ-समारम्भ करना पड़ता [illegible] और इसी प्रकार के लिए आरम्भ [illegible] अन्न [illegible]

पर उनके विवाह आदि के निमित्त भी तरह-तरह का सावद्य व्यवहार करना पड़ता है और इस प्रकार पाप की परम्परा चलती जाती है। अतएव विवाह में सिवाय आरंभ के और कोई बात ही नहीं है।'

वह कहता है—'वेश्या-गमन में ऐसा कोई झंझट ही नहीं है। थोड़े से पैसे दिये और छुट्टी पाई। वह मरे चाहे जिये, हमें कोई सरोकार नहीं। न हमें वेश्या के कपड़े की चिन्ता, न आभूषणों की फिक्र। न उनके लिए किसी प्रकार का आरंभ, न किसी तरह का समारंभ। विवाह आरंभ-समारंभ का घर है। अतएव विवाह से वेश्या-गमन में कम पाप है।

मित्रो! ऊपर की दृष्टि से वेश्या-गमन में कम पाप नजर आता है, पर जरा गहराई में जाकर देखो तो पता चलेगा कि इस विचार में अनर्थों की कितनी दीर्घ परम्परा छिपी हुई है। यह विचार कितने भयंकर पापों से परिपूर्ण है। इस कुविचार की बुराइयाँ जिह्वा द्वारा नहीं बतलाई जा सकतीं।

गृहस्थ सदाचारी बन सकता है, वेश्यागामी नहीं। वेश्यागामी महापापी है यहाँ तक कि वेश्या-गमन की भावना मन में उदित होना भी घोर पाप का कारण है।

[illegible] थोड़े से पैसे [illegible] करता है [illegible] करता है [illegible] करने वाला [illegible] लाख के [illegible]

इससे मेरा बिना किसी विशेष आरंभ-समारंभ के काम चल जाता है और उस धनी का भी उपकार हो जाता है। चुराये हुए धन पर से धनी का ममत्व कम हो जाता है और ममत्व का घटना धर्म है। इस तरह धनी ममत्व की अधिकता से बच जाता है और मैं खेती, व्यापार आदि के आरंभ-समारंभ से बच जाता हूँ।

अब यह आपका काम है कि आप खेती करने वाले और चोरी करने वाले दो पुरुषों के काम की परीक्षा करके यह निर्णय करें कि अल्प पाप किसमें है और महापाप किसमें है?

मुझसे एक भाई कहते थे—'आप गायें पालने का उपदेश देते हैं।' मैंने उन्हें बतलाया—आप मेरे कथन को ठीक तरह नहीं समझे हैं और ऊपर की बात लेकर उड़ पड़े हैं।

मेरा कहना यह है कि बाजार का दूध लेने से घर पर गाय पालने में कम पाप है। इस कथन की सचाई सिद्ध करने के लिए अनेक प्रमाण मौजूद हैं। अभी कुछ दिनों पहले बीकानेर के एक विद्वान सेठजी मेरे पास आये थे। उन्होंने मुझे बतलाया कि—जितने दूध बेचने वाले घोसी आते हैं, उनके घर आकर देखा जाय तो एक भी बछड़ा न मिलेगा। क्योंकि वे कसाईखाने में बछड़े भेज देते हैं। हाय! कितनी करुणा [illegible] है! फिर भी आप मोल का दूध लेने में पाप नहीं समझते?

[illegible] ऐसा होना सुना जाता था मगर मालूम [illegible] होता है [illegible] सुनते हैं—घोसी लोग [illegible] है, जिससे गाय दूध [illegible] तड़फने लगती है। और

फैलाऊँ, अमुक का परद्वार नीलाम पर चढ़ा दूँ' ऐसा सोचा करते हैं, उन्हें आप पुण्यात्मा समझते हैं। यह कैसा उलटा ज्ञान है? जो लोग मिट्टी खिलाने और जूते गाँठने में ही पाप मानते हैं और ऐसे भयंकर कामों को पाप नहीं मानते, वे अभी अज्ञान में पड़े हैं।

आज परंपरा के कारण पुष्प सूँघने वाले को पापी और तमाखू सूँघने वाले को अच्छा समझा जाता है। लोग इसका कारण यह समझाते हैं कि तमाखू अचित्त वस्तु है और पुष्प सचित्त। किन्तु अगर आप इन दोनों को विचार की तुला पर तोलेंगे तो बड़ा अन्तर नजर आएगा। उस समय आपको मालूम होगा कि तमाखू में ज्यादा पाप है या पुष्पों में। जैनशास्त्र ऊपर-ऊपर से विचार करने का उपदेश नहीं देता, वह उत्पत्तिस्थान तक की खोज करने का उपदेश देता है। अगर आप इस बात का विचार करेंगे कि तमाखू किस प्रकार बोई जाती है और बाद में कितने आरंभ-समारंभ के साथ तैयार की जाती है और साथ ही मादक होने के कारण उसमें कितनी भावहिंसा होती है तो आपको तत्काल मालूम हो जायगा कि पुष्प सूंघने में अपेक्षाकृत अल्प पाप और तमाखू सूंघने में अपेक्षाकृत महापाप है। जिन भाइयों को इतना गहरा विचार करना न आवे, वे यदि ऊपरी दृष्टि से भी विचार करेंगे तो भी उन्हें असलियत का भान हो जायगा।

विचार कीजिए मनुष्य तमाखू सूंघने के बाद क्या करता है? नासिका का मैल इधर उधर डाल देता है और कई बार दीवालों पर भी हाथ से पोंछ देता है। यहाँ तक देखा जाता है कि कई लोग अपने कपड़ों से भी पोंछ लेते हैं। उनके कपड़े बुरी तरह बासने लगते हैं। लोग उन्हें घृणा की दृष्टि से देखते हैं। और जब कपड़े

मैं कई वार कह चुका हूँ कि सीधी वस्तु के भरोसे अल्प पाप की जगह कई भाई अपने सिर पर महापाप ले लेते हैं। सीधा खाना या उसका शौकीन बनना आलस्य की खास निशानी है। आलस्य में धर्म नहीं होता। धर्म तो कर्त्तव्यपालन से होता है।

❀ ❀ ❀ ❀

अच्छा वैद्य रोगी का मनचाहा पथ्य नहीं बतलाता, वरन रोगी के स्वास्थ्य का ध्यान रखकर हितकर पथ्य बतलाता है। सच्चा उपदेश जनता को चाटुकारी नहीं करता, बल्कि सच्ची, हितकर और अभ्युदय कारक बात ही कहता है।

सोते हैं। यदि मैं आज जमीन पर सो गया तो उनकी विशेष भक्ति समझनी चाहिए। जो रात-दिन दुःखों के दरिया में गोता खाता रहता है, जो कठिनाइयों को देखकर डर जाता है, वह सच्चा भगवदुपासक नहीं कहला सकता। भगवदुपासक को किसी भी हालत में दुःख नहीं सता सकता। उसके चेहरे पर सदा हँसी नाचती रहती है। जब वह कष्टों या कठिनाइयों में घिर जाता है तो वीरतापूर्वक उनका सामना करता है। निराशा का तो वह नाम नहीं जानता।

❀ ❀ ❀ ❀

अन्तःकरण शुद्ध किये बिना कभी शान्ति नहीं मिल सकती। जिस बरतन में बदबूदार घी भरा हो उसे चाहे जितना माँजा जाय, उसकी बदबू नहीं मिटने की। इसी प्रकार स्नान करने से अन्तःकरण शुद्ध नहीं होता। अन्तःशुद्धि के लिए चोरी से बचने की जरूरत है। अन्तःशुद्धि के लिए व्यभिचार से सदा दूर रहना चाहिए। अन्तःशुद्धि के लिए आलस्य से सदा दूर रहना जरूरी है। जो मनुष्य इन बातों का ध्यान रक्खेगा उसे शान्ति मिले बिना न रहेगी।

अन्तःकरण की शान्ति चाहने वालों को दूसरे पर कभी द्वेष न लाना चाहिए। द्वेष की अग्नि बड़ी भयंकर है। द्वेष की आग में संतप्त प्राणी को अच्छे शृङ्गार भी लपलपाती हुई भयंकर अग्नि के समान लगते हैं। जब आपका कोई शत्रु बढ़िया वस्त्राभूषण पहन कर आपके सामने से निकलता है तो आपके दिल में कैसी आग धधकने लगती है? [illegible] हृदय में घमासान युद्ध छिड़ा रहता है। जिस [illegible] वह नरक तुल्य है।

आप दूसरों को अभयदान देना चाहते हैं। पर यह तो समझ लो कि अभय कौन दे सकता है? जिसके पास जो है वह वही दान दे सकेगा। अगर अभयदान देना चाहते हैं तो पहले स्वयं अभय—निडर बनो। जिसे भूत, प्रेत, डाकिन, जन्म, जरा, मरण आदि भयभीत नहीं कर सकते, संसार की कोई शक्ति जिसे अपने पथ से विचलित नहीं कर सकती, वह अभय है।

* * * *

जो धर्म की रक्षा करना चाहता है उसे वीर बनना पड़ेगा। वीरता बिना धर्म की रक्षा नहीं हो सकती। भक्त का मुख्य उद्देश्य वीर बनना ही होना चाहिए।

जो वीर भक्त बन जाता है, उसके मार्ग में कितनी ही आपत्तियाँ आवें, कोई भी उसके मार्ग से डिगाने का प्रयत्न करे, वह विचलित नहीं होता। क्या कामदेव विपत्तियों से डरा था?

* * * *

पारस्परिक अविश्वास होना अनैक्य का आधिपत्य होना, एक का दूसरे को रावण रूप में दिखाई देना, यह सब आसुरी सम्पदा के लक्षण हैं। इससे पाप बड़े प्रबल होते हैं। ज्ञानी जन इस बात को अच्छी तरह जानते हैं, इसलिए वे अपना समान दृष्टि-दान करते [illegible] है

[illegible]

जिसके अन्तःकरण में चंचलता भरी है, जिसका हृदय क्रोध की भट्टी बना हुआ है, वह अगर दूसरों को उपदेश देने के लिए उद्यत होता है तो उसका दुस्साहस ही समझना चाहिए।

आज वक्ताओं की बाढ़-सी आ रही है, मगर अपनी ही वक्तृता के अनुसार चलने वाले कितने हैं ? जो सत्य पर नहीं चलता वह उपदेश देकर दूसरों को सत्यवादी कैसे बना सकता है ?

व्याख्यानमञ्च पर खड़ा उपदेशक जब कहता है—'मैं आकाश बाँध दूंगा, मैं पाताल बाँध दूंगा,' तब देखना उसने अपनी धोती अच्छी तरह बाँधी है या नहीं ? जो अपनी धोती भी अच्छी तरह नहीं बाँध सकता वह आकाश-पाताल क्या बाँधेगा ?

आत्मा स्वतंत्र है; इस तथ्य को समझते हुए भी जो कहता है—'मुझे अमुक का सहारा चाहिए, अमुक मेरी आशा पूरी कर देगा, अमुक के द्वारा मेरा भला-बुरा होगा, इत्यादि, उसने धर्म का मर्म नहीं जाना।

वास्तव में आत्मा अपने ही कर्त्तव्यों से स्वतंत्र बनती है और उसी के कर्त्तव्य उसे स्वतंत्र से परतंत्र बना डालते हैं।

❀ ❀ ❀ ❀

भिखारी आपके पास माँगने आता है। आप उसे पैसा-दो पैसा दे देते हैं और वह सन्तोष कर लेता है। पर आपको कितने पैसों की आवश्यकता है ? हजारों लाखों में भी आपका मन नहीं मानता। अब आप ही सोचिए - बड़ा भिखारी कौन है—आप या वह ?

भिखारी आप से रोटी का टुकड़ा माँगता है, मिलने पर वह उसी में खुश हो जाता है। पर आपको कलाकंद लड्डू, बर्फी, आचार, मुरब्बा आदि में भी संतोष नहीं। बताइए—बड़ा भिखारी कौन है?

ॐ ॐ ॐ ॐ

भक्त कहता है—'किसके आगे अपना दुखड़ा रोऊँ? जिसे अपना दुःख सुनाता हूँ। वह स्वयं दुखी है। जो अपना दुःख नहीं मिटा सकता है वह मेरा दुःख क्या दूर करेगा? जो समस्त दुःखों से परे है वही मेरा दुःख दूर करेगा।

दुःख का गुलाम दुःख से कैसे छुड़ा सकता है? स्वयं रोने वाला दूसरे को क्या हँसाएगा?

अपनी रक्षा के लिए जो दूसरों का मुहताज है वह मेरी रक्षा कैसे कर सकता है?

ॐ ॐ ॐ ॐ

मनुष्य अपनी शक्ति से अपरिचित रह कर निर्बल बन रहा है। जब वह अपनी शक्ति को पहचान लेगा, तब उसे अपनी गहरी भूल का पता चलेगा। उस समय वह सहज ही समझ लेगा—'तमाम दुनिया और देवताओं के दल एक ओर हैं और मेरा बल दूसरी ओर है [illegible]

[illegible] मतलब यह [illegible] के [illegible] के [illegible] [illegible]

हैं और कइयों के प्राण हरण कर लिए हैं। जिस पर तुम भरोसा करो, वही तुम्हें दगा दे जाय, भला यह भी कोई बल है? ऐसा धन बल, बल क्या हुआ वैरी हुआ। इसे तुच्छ समझ कर प्रभु की शरण में जाओ।

जनबल की भी यही दशा है। यह कईबार कीड़ा बन कर तुम्हारा घोर अहित करता है। संसार में सर्वोत्कृष्ट बल ईश्वर का ही बल है। उसी को प्राप्त करने का प्रयत्न करो।

संसार के पदार्थ दगाखोर हैं या नहीं, यह निर्णय करना हो तो अनाथी मुनि का अनुकरण करो। उन्होंने हाँडी की तरह बजा-बजा कर हरेक वस्तु की परीक्षा की थी। परीक्षा करने पर तुम्हें भी थोथापन नजर आने लगेगा।

* * * *

जब तक गरीब आपको प्यारे नहीं लगेंगे तब तक आप ईश्वर को प्यारे न लगेंगे।

अगर आपको गरीब प्यारे नहीं लगते, तो क्या दूसरों को सताने के लिए ईश्वर से बल की याचना करना चाहते हो?

* * * *

[illegible] बल समझ कर बल की योजना
[illegible] याचना उस बल का उपयोग
[illegible] कर सकता उसे बल
[illegible]

प्राचीन काल में बहत्तर कलाएँ प्रत्येक को सीखनी पड़ती थीं। उनमें कपड़ा बुनना और खेती करना क्या सम्मिलित नहीं था ?

ॐ　　ॐ　　ॐ　　ॐ

जो देश रोटी और कपड़े के लिए दूसरे देश का मुंह ताकता है वही गुलाम है। गुलामी रोटी और कपड़े की पराधीनता से आती है। जो देश दो बातों में अर्थात् रोटी और कपड़े में स्वतंत्र होता है उसे कोई गुलाम नहीं बना सकता।

ॐ　　ॐ　　ॐ　　ॐ

रोटी को छोटी और गहनों को बड़ी चीज मानना विवेकशून्यता का लक्षण है। गहनों के बिना जीवन कट जाता है पर रोटी के बिना कितने दिन कट सकेंगे ? आपने गहनों को बड़ी चीज मान कर आडम्बर बढ़ा लिया। परिणाम यह हुआ कि भारत में छह करोड़ आदमी भूखों मरते हैं।

ॐ　　ॐ　　ॐ　　ॐ

आपके घर में [illegible] बहिनें [illegible] हैं। इनका आदर करो इन्हें तुच्छ मत [illegible] [illegible]

[illegible]

याद रक्खो, अगर समय रहते न चेते और विधवाओं की मान-रक्षा न की, उनका निरन्तर अपमान करते रहे, उन्हें ठुकराते रहे, तो शीघ्र ही अधर्म फूट पड़ेगा। आपका आदर्श धूल में मिल जायगा और आपको संसार के सामने नतमस्तक होना पड़ेगा।

❀　　❀　　❀　　❀

विधवा या सुहागिन बहिनों के हृदय में कुविचार उत्पन्न होने का प्रधान कारण उनका निकम्मा रहना है। जो बहिनें काम काज में लगी रहती हैं, उन्हें कुविचारों का शिकार होने के लिए अवकाश नहीं मिलता।

विधवा बहिनों के लिए चर्खा अच्छा साधन माना गया है, पर आप लोग तो उसके फिरने में वायुकाय की हिंसा का महा पाप मानते हैं। आपको यह विचार कहाँ है कि अगर विधवाएँ निकम्मी रह कर इधर-उधर भटकती फिरेंगी और पापाचार का पोषण करेंगी तो कितना पाप होगा।

❀　　❀　　❀　　❀

बहिनो! शील आपका महान् धर्म है। जिन्होंने शील का पालन किया है वे प्रातःस्मरणीय बन गई। आप धर्म का पालन करेंगी तो [illegible] बन जाएँगी।

[illegible] महाचारिणी हो, [illegible] उदार और नम्र [illegible] कभी न आना चाहिए। बहिनो!

मनुष्य मात्र ईश्वर की मूर्ति है। किसी भी मनुष्य को नीच मत समझो। उससे घृणा मत करो। मनुष्य से घृणा करना परमात्मा से घृणा करना है। अज्ञानी जिसे नीच कहते हैं, उनकी सेवा करो, बल्कि उनकी खूब सेवा करो। संतुष्ट रहो। दुःख पड़ने पर घबड़ाओ नहीं, सुख में फूलो मत। समभाव में ही सच्चा सुख है।

❀ ❀ ❀ ❀

घर-द्वार, हाट, हवेली, रुपया, पैसा—कोई भी जड़ वस्तु स्थिर नहीं है। बड़े-बड़े चक्रवर्ती भी इन्हें अपने साथ नहीं ले जा सके। क्या तुम साथ ले जाने की आशा रखते हो? नहीं, तो सद्व्यय करना सीखो। दान करने से परोपकार के साथ आत्मोपकार भी होता है। परोपकारी को सारी दुनिया पूजती है।

❀ ❀ ❀ ❀

ओ मनुष्य! तू तकदीर लेकर आया है। जरा तकदीर पर भरोसा रख। प्रकृति का कानून मत तोड़। क्या माँस न खाने वाले भूखों मरते हैं? हम देखते हैं कि जितने माँसाहारी भूखों मरते हैं, उतने शाकाहारी नहीं।

❀ ❀ ❀ ❀

[illegible] समझना [illegible] है विवेकपूर्वक विचार करने से [illegible]

[illegible] ईश्वर के नाम लेने का [illegible] से तमाम कुवासनाएँ

मिट जाती हैं। राजा जिनका हितचिन्तक बन जाता है उसे चोरों और डाकुओं का डर नहीं रहता; पर जो पुरुष राजा के राजा (परमात्मा) के साथ नाता जोड़ लेगा उसे काम, क्रोध, आदि लुटेरे नहीं लूट सकते। वह सदा सर्वत्र निर्भय रहेगा।

सामायिक

राग-द्वेष का परित्याग कर, प्राणीमात्र को विनय के साथ अपने आत्मा के समान देखना 'सम' है। इस समभाव का आय अर्थात् लाभ होना 'समाय' कहलाता है और जिस क्रिया के द्वारा 'समाय' की प्राप्ति की जाय उसे 'सामायिक' कहते हैं।

कोई भाई प्रश्न कर सकता है कि हम गृहस्थ लोग राग-द्वेष से छूट कर समत्व कैसे प्राप्त कर सकते हैं? समभाव का उपदेश तो व्यक्तित्व का नाशक और कायरता का उत्पादक जान पड़ता है। यह विधवा बहिनों और उन भाइयों के लिए हो सकता है जिन्होंने संसार बन्धन को तोड़ कर फेंक दिया है। संसार का व्यापार करने वालों के लिए यह उपदेश किस काम का?

"मेरा यह [illegible]

[illegible]

सामायिक के विषय में उत्पन्न होने वाले तर्क उठ ही नहीं सकते। क्या कोई शूरवीर भूखा रहकर संग्राम कर सकता है ? भोजनसामग्री समाप्त हो जाने पर सिपाही एक दिन भी संग्राम में नहीं टिक सकता। आप जब व्यापार के लिए बाहर निकलते हैं, तब साथ में कुछ सामग्री क्यों ले जाते हैं ? इसलिए कि वह सामग्री आपकी शक्ति है। इसे आप नहीं भूलते; पर मित्रो ! आप सच्ची शक्ति देने वाली वस्तु के प्रति शंकाशील अथवा प्रमादशील बन गये हैं।

सामायिक सच्ची शक्ति देने वाली वस्तु है। जिस समय सच्ची सामायिक की जाती है उस समय आत्मा क्रोध, मान, माया, लोभ, राग-द्वेष आदि विकारों से रहित हो जाता है। निरन्तर गति से राग-द्वेष आदि चलते रहने से आत्मा की शक्ति क्षीण होती है और मनुष्य निकम्मा बन जाता है। जो मनुष्य रात-दिन परिश्रम करता रहता है, उसकी कार्य करने की शक्ति जल्दी नष्ट हो जाती है। पर जो समय पर गाढ़ निद्रा लेता रहता है वह नुकसान से बचा रहता है। क्योंकि प्रगाढ़ निद्रा लेने से उसे नवीन शक्ति प्राप्त हो जाती है। ठीक यही बात सामायिक के विषय में समझनी चाहिए। जो मनुष्य राग-द्वेष को थोड़े समय के लिए भी त्याग देता है, उसके आत्मा में अपूर्व ज्योति प्रकट होती है और वह शान्ति का आनन्द अनुभव करता है।

ऐसी अपूर्व कौन-सी वस्तु है जो सामायिक द्वारा प्राप्त न हो सकती हो ?

एक सच्ची सामायिक की कीमत में चिन्तामणि और कल्पवृक्ष भी तुच्छ है और वस्तुओं की तो बात ही क्या ?

संसार में आज लड़ाई-झगड़े तेजी से बढ़ रहे हैं पति-पत्नी पिता-पुत्र देवरानी-जेठानी और भाई-भाई [illegible] समाज सब के सब

सामायिक के अभाव में ही लड़ रहे हैं। अगर लोग हृदय में सामायिक को अपना लें, तो इन लड़ाइयों का शीघ्र अन्त आ सकता है।

आज लाभ की कसौटी पैसा है। पैसे का लाभ ही आजकल लाभ माना जाता है। पैसे के लिए लोग दिन-रात एक कर रहे हैं, पर सामायिक के अपूर्व लाभ को कोई लाभ ही नहीं मानता। इसके लिए दो घड़ी खर्च करना उन्हें पसन्द नहीं है।

दो घड़ी रोज विज्ञान का अध्ययन करने वाला महाविज्ञानी बन जाता है, दो घड़ी नित्य अभ्यास करने वाला महा-पण्डित बन जाता है, इसी प्रकार यदि आप नित्य दो घड़ी सामायिक में खर्च करेंगे तो आपको अपूर्व शान्ति मिलेगी और महाकल्याण का लाभ होगा।

मित्रो! मन को मजबूत बनाइये और सभी सामायिक में लगाइए। अगर आप संसार-भ्रमण को काटना चाहें और महा-व्याधियों से ग्रसित आत्मा को उबारना चाहें तो महावीर की बतलाई हुई इस अमूल्य सामायिक रूपी महौषध का सेवन कीजिए। आपका कल्याण होगा।

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

समत्व प्राप्त करना ही सामायिक का खास उद्देश्य है। प्रश्न उठ सकता है कि समत्व की पहचान क्या है? उत्तर होगा—क्षण क्षण में शान्ति का अनुभव होना ही समत्व की पहचान है। जिस सामायिक के द्वारा ऐसी अलौकिक शान्ति सुख मिले उसके आगे चिन्तामणि और कल्पवृक्ष किस गिनती में हैं? यद्यपि आप गृहस्थों को पैसे-पैसे के लिए कष्ट उठाना पड़ता है पर सामायिक में बैठे हुए

श्रावक को यदि कोई कीमती से कीमती वस्तु देने आवे तो क्या उस समय वह लेगा ?

'नहीं !'

तो अनुमान लगाइए कि सामायिक कितनी कीमती है, जिसे त्याग कर वह उन वस्तुओं को लेने के लिए तैयार नहीं होता। सामायिक के समय प्राप्त होने वाले बड़े भारी उपहार को भी श्रावक खुशी के साथ अस्वीकार कर देता है, मानो स्वयं उसका दान ही करता हो। उस समय के उसके हर्ष की तुलना करना अशक्य है। इस हर्ष का अनुभव बातों से नहीं, क्रिया से हो सकता है।

सामायिक में बैठ करके भी जो अपने भाग्य को कोसता है, तुच्छ वस्तुओं के लिए भी आठ-आठ आँसू गिराता है, उसे कुछ लाभ नहीं होता। ऐसी सामायिक करने और न करने में ज्यादा अन्तर नहीं रहता।

सामायिक के समय श्रावक को समस्त सावद्य अर्थात् पापमय क्रियाओं से निवृत्त होकर निरवद्य अर्थात् निष्पाप क्रिया ही करनी चाहिए।

जैसे चतुर व्यापारी अपने पुत्र को व्यापार में प्रवृत्त करते समय सीख देता है कि—देखो, तुम्हें लफंगे, चोर तुम्हारे पास बहुत आवेंगे उनसे सावधान रहना और भलेमानसों के साथ ही व्यापार करना [illegible] सावद्य और निरवद्य की सीख श्रावक के लिए [illegible] इस पर खूब ध्यान देना चाहिए

[illegible]

दो कभी घड़ी का समय नियत किया है। यह समय ठीक है और हम भी इसका समर्थन करते हैं।

सामायिक में बैठ कर निकम्मा नहीं रहना चाहिए। मनुष्य का मन बन्दर-सा चपल है। उसे कुछ न कुछ काम चाहिए। जब उसे अच्छा काम नहीं मिलता तो बुरे काम में ही लग जाता है। बुरे काम करो चाहे सावद्य काम करो, एक ही बात है। सावद्य काम नीचे गिराने वाले और निरवद्य काम ऊपर उठाने वाले होते हैं। अतएव श्रावक को निरवद्य कामों की तरफ विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए। कहा भी है :—

> सामाइयंमि उ कए, समणो इव सावओ हवइ जम्हा।
> एएण कारणेणं बहुसो सामाइयं कुज्जा ॥

अर्थात्—सामायिक करते समय श्रावक भी साधु के समान हो जाता है, क्योंकि वह उस समय सावद्य का त्यागी है, अतएव बार-बार सामायिक करनी चाहिए।
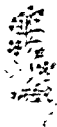
स्नान

समाज में आजकल स्नान का विषय विवादास्पद बन गया है। प्रश्न यह है कि स्नान करना चाहिए या नहीं ? हम इस प्रश्न पर जब वैज्ञानिक दृष्टि से विचार करते हैं, तब इस नतीजे पर पहुँचते हैं कि स्नान करने से हानि भी होती है और लाभ भी होता है। यह किस प्रकार ? सो सुनिए—विज्ञान बतलाता है कि स्नान करने से चमड़ी के स्वाभाविक गुण नष्ट हो जाते हैं और चमड़ी की हवा द्वारा किये जाने वाले आघातों को सहन करने की शक्ति नष्ट हो जाती है। साथ ही स्नान न करने से रोमकूपों में मैल जम जाता है और उनमें होकर आने-जाने वाली हवा में रुकावट पड़ जाती है। हवा की इस रुकावट के कारण बड़े-बड़े भयंकर रोग फूट निकलते हैं।

ब्रह्मचारी के लिए स्नान करने का शास्त्र में निषेध है सो इस कारण कि वह आसन आदि के प्रयोग द्वारा हवा के आ[illegible] [illegible]न की रुकावट दूर कर सकता है इसलिए हमारे यहाँ ब्रह्म[illegible] को स्नान करने की मनाई की विधि चली आई है। पर किस[illegible] [illegible]

श्रावक को साधु की क्रिया पालने का आदेश नहीं दिया गया है। यह बात मैं अपने मन से नहीं कहता, पर आनन्द श्रावक का आदर्श आपके सामने है। इस पर ठीक-ठीक विचार करने से आप सत्य स्वरूप को पहचान लेंगे।

मैं अन्ध-श्रद्धा वाला तो हूँ नहीं कि यथा अगर अन्न का त्याग करने के लिए मेरे पास आवे तो मैं उसे अन्न का त्याग करा दूं। वस्तु-स्थिति की तरफ नज़र डाल कर देखना मेरा कर्त्तव्य है। कोई भाई बैठा-बैठा अचानक ही वैराग्य में आकर निष्कारण 'सन्थारा' करने की इच्छा प्रकट करे तो मैं साफ़ इन्कार कर दूंगा, फिर वह अपनी इच्छा से भले ही मनचाहा करे। मैं तो उसे आत्महत्या का पाप कहूँगा। स्नान के सम्बन्ध में भी मेरा शास्त्रीय अनुभव यही बतलाता है कि कोई श्रावक अपनी इच्छा से स्नान न करे, यह उसकी इच्छा पर निर्भर है, परन्तु शास्त्र गंदा रहने की आज्ञा नहीं देता। गंदा रहने से लोग जिनमार्ग की निन्दा करते हैं और गंदा रहने वालों की भी हँसी करते हैं। वे यह समझते हैं कि साधु इन्हें गंदा रहना सिखलाते होंगे।

साधु गंदा रहना नहीं सिखलाते, हाँ विधि की तरफ अवश्य ध्यान देना चाहिए। साधु विधि का और यतना का उपदेश अवश्य देते हैं।

कई भाइयों को यह बात शायद नई मालूम होती होगी और कई प्रकार से शंकित होते होंगे, पर मित्रो! क्या करूँ? मुझ से का बात नहीं छिपाई जाती।

आनन्द श्रावक स्नान करते समय पानी का किस प्रकार उपयोग करता था, यह उपासकदशांग शास्त्र में लिखा है—

वट्टिएहिं उदगम्मि घडेहिं

इसकी टीका यह है—उष्ट्रिका—बृहन्मृण्मयभाण्डं, तत्पूरण-प्रयोजना ये घटास्त उष्ट्रिकाः, उचितप्रमाणा अतिलघवो महान्तो वेत्यर्थः।

अर्थात् उष्ट्रिका नामक प्रमाण से बना हुआ एक मिट्टी का पात्र होता था। आनन्द उसे भर कर स्नान करता था। इसका मतलब यह था कि पानी कहीं आवश्यकता से न्यूनाधिक न हो। मित्रो! देखिए, परिमाण करने से कितनी निवृत्ति हो गई? एक आदमी कुएँ या सरोवर में स्नान करेगा और दूसरा इस प्रकार करेगा। अब आप ही सोचिए, महापाप से कौन बचा?

(उपासकदशांग की व्याख्या में से उद्धृत)

भीनासर
२२—१०—२७

दतौन

—:•:—

'दंतवणविहि' का संस्कृत टीका में अर्थ किया है—'दंतपावनं
दन्तमलापकर्षणकाष्ठम् ।' अर्थात् दांतों का मल साफ करने के काम
में आने वाली लकड़ी ।

पहले के श्रावक दतौन भी किया करते थे । आजकल के कई
भाई हाथ-मुंह धोने और दतौन करने का दो-चार दिन के लिए त्याग
ले लेते हैं पर श्रावक के लिए ऐसी क्रिया का कहीं विधान देखने में
नहीं आया । लोग अपने मन मे कुछ भी कर लें, मगर मैं तो इस
समय शास्त्र की बात कह रहा हूँ ।

पूर्वीय और पाश्चात्य वैद्यक शास्त्र के कथनानुसार दतौन न
करने से बड़ी-बड़ी बीमारियाँ हो जाती हैं ।

कई भाई इसलिए स्नान करना छोड़ देते हैं कि ऐसा करने से
'आरम्भ' में चले जाएँगे । [illegible] जब दतौन नहीं करते तो हम भी
दतौन न करें । इसमें हानि ही क्या है ?

परन्तु इन भाइयों को समझना चाहिए कि श्रावक और साधु की विधि में इतना अन्तर है, जितना आसमान और जमीन में। साधु ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं और भोजन पर पूर्ण अंकुश रखते हैं। आरोग्य-शास्त्र का नियम है कि जो सात्विक और सुपथ्य आहार करता है उसके दांतों पर मैल नहीं जमता तथा दुर्गन्ध भी पैदा नहीं होती। इस नियम के अनुसार साधु बिना दतौन के भी रह सकता है पर आजकल के गृहस्थ, जो आहार आदि पर जरा भी अंकुश नहीं रखते, कैसे साधुओं का अनुकरण करते हैं, यह समझ में नहीं आता।

कई साधु भी गृहस्थ को दतौन का त्याग करा देते हैं। इसका कारण यह मालूम होता है कि साधु की सहज दृष्टि इसी पर जाती है। और गृहस्थ भी यही सोचता है कि जब मुनि महाराज दतौन के सर्वथा त्यागी हैं, तब यदि हम भी कुछ दिनों के लिए उनका अनुकरण करें तो क्या हर्ज है? पर मित्रो! मैं यह कहता हूँ कि जो साधु लौकिक-दृष्टि को मानने न रखते हुए गृहस्थ को त्याग करा देता है, वह उस पर अनुचित बोझा डालता है। ऐसा करने से वे उलटे रोगी बन जाते हैं।

दतौन का त्याग जिसे करना है वह खुशी से त्याग करे, परन्तु इस त्याग से पहले जिस तैयारी की आवश्यकता है, जैसे तामस और राजस भोजन का त्याग, मर्यादाहीन भोजन का त्याग आदि, पहले उसकी पूर्ति तो कर ले। पशु अपनी मर्यादा के अनुसार ही भोजन करता है अतएव उसे दतौन करने की आवश्यकता नहीं होती। फिर भी [illegible] मनुष्य [illegible] अपेक्षा अधिक साफ सुथरे रहते हैं [illegible] का आशय यह है कि [illegible] दांतों को मैला बनाने वाले [illegible] त्याग कर दे [illegible] दतौन [illegible] की आवश्यकता [illegible] न रहे। [illegible] भोजन का त्याग [illegible] और इस कारण दांत मलीन

और दुर्गन्धमय बन जाते हैं। फिर भी दतौन करने का त्याग करते हैं, यह चारित्र के क्रम के अनुकूल नहीं है। अतएव मित्रो! क्रम को देखो और चारित्र की शृङ्खला की ठीक तरह से रक्षा करो।

साधुओं को अपनी विधि पालने के लिए शास्त्र में वर्णित किसी उच्च श्रेणी के साधु को अपना आदर्श बनाना चाहिए। इसी प्रकार श्रावक को अपनी विधि पालने के लिए उच्चश्रावक आनन्द की दिनचर्या पर ध्यान देना चाहिए। आनन्द श्रावक का उल्लेख इसी प्रयोजन के लिए शास्त्र में किया गया है। ऐसा न होता तो उसके उल्लेख की आवश्यकता ही क्या थी?

(उपासकदशांग की व्याख्या में से उद्धृत)

भीनासर }
२०—१०—२७ }

अतुल बुद्धि का अगर दुरुपयोग करता है, तो आप निर्णय कीजिए दोनों में कौन श्रेष्ठ है ?

जीवन के प्रधान आधारभूत वीर्यरक्षा की कसौटी पर मनुष्य को और पशु को परखिए। आपको आश्चर्य होगा कि जगत् का सर्वश्रेष्ठ प्राणी किस प्रकार पशु से भी इस विषय में गया-बीता है! जो बुरी बात पशुओं में भी नहीं पाई जाती वह मनुष्य में यहाँ तक कि श्रावक कहलाने वालों में भी पाई जाती है।

श्रावक परस्त्री का त्याग करते हैं पर स्वस्त्री में अपने को सर्वथा ही खुले समझते हैं। आप जरा मेरी बात पर ध्यान दीजिए। मैं पूछता हूँ, जो पराये घर की जूंठन त्याग कर अपने घर की रोटियाँ मर्यादा भुलाकर खायेगा उसे क्या अजीर्ण न होगा? क्या वह रोग से बच जायगा? नहीं। भाइयो! चाहे पराये घर की जूंठन आपने त्याग दी हो पर यदि अपने घर की मर्यादा —मात्रा— न रक्खोगे तो याद रखना आपकी रक्षा न होगी। स्वदारसन्तोष धारण करना पुरुषमात्र का कर्त्तव्य है। स्वस्त्री के प्रति तीव्र असंतोष होना श्रावक-धर्म से प्रतिकूल है।

पहले के ज़माने में बिना पूर्ण वय के कोई संसार-कृत्य नहीं करता, पर आज आठ-आठ दस दस वर्ष के छोकरे इस काम में लग जाते हैं। माता पिता [illegible] इस उम्र में विवाह कर देते हैं क्या यह कायदे के अनुसार है? [illegible] श्रावक सूक्ष्म हिंसा की तरफ ध्यान देते हैं पर इस [illegible] भयंकर हिंसा [illegible] नज़र में नहीं आती। [illegible] चल कर भोली [illegible] खड़ा किया है। इस क्रिया के

लिए शास्त्र में 'सरिसवया' आदि पाठ कहा गया है। विवाह करने के पश्चात् जो स्त्री 'धम्मसहाया' अर्थात् धर्मक्रिया में सहायता पहुँचाने वाली समझी जाती थी वह आज भोग की सामग्री गिनी जाती है।

जो वस्तु संजीवनी जड़ी से भी अधिक महत्त्वपूर्ण है उसे इस प्रकार नष्ट करना सचमुच घोर अविवेक है और अपने पतन को आमंत्रण देना है। क्या आप अमृत से पैर धोने वाले को बुद्धिमान कहेंगे? नहीं। जिस वस्तु से तीर्थंकर, अवतार या महापुरुष कहलाने वाले महान् आत्मा उत्पन्न होते हैं, उस वस्तु को ऋतुकाल के बिना फैंक देना कितनी मूर्खता है? जो भाई-बहिन अपनी शक्ति की समुचित रक्षा करेंगे वे संसार के सामने आदर्श खड़ा कर सकेंगे। आपने हनुमानजी का नाम सुना है, जिनमें अतुल बल था। जानते हैं, उनमें यह बल कहाँ से आया था? वह रानी अंजना और महाराज पवन के बारह वर्ष तक ब्रह्मचर्य पालने का प्रताप था। इसलिए वीर्यरक्षा करना अपनी सन्तान की रक्षा करना है।

⊛ ⊛ ⊛ ⊛

कितनेक मनुष्यों की दशा कुत्तों और गधों से भी गई-बीती पाता हूँ, तब मेरे संताप की सीमा नहीं रहती। ये जानवर प्रकृति के नियमों के [illegible] पाबन्द रहते हैं? पर मनुष्य? वह प्रकृति के नियमों को [illegible] ठुकराता है। शायद मनुष्य सोचता है— नियमों का [illegible] [illegible]

कहा जाय, विवाह हो जाने पर भी मनुष्य पर-स्त्री के पीछे घूमते फिरते हैं! हाय! यह कितनी बड़ी नीचता है? क्या मनुष्य में अब पशुओं जितनी बुद्धि भी अवशेष नहीं रही? ६० वर्ष के बूढ़े के गले १२ वर्ष की कन्या बाँध देना विवाह प्रथा का घोरतम उपहास करना है, मानवीय बुद्धि का दिवाला फूंक देना है, अनाचार दुराचार को आमंत्रण देना है, समाज के विरुद्ध असह्य विद्रोह करना है, राष्ट्र के साथ द्रोह करना है, भावी सन्तान के पैर पर कुठाराघात करना है और स्वयं अपने जीवन को कलंकित करना है।

इस प्रकार का दुस्साहस प्रायः अमीर लोग ही करते हैं। बेचारे गरीबों की इतनी हिम्मत कहाँ? धनवान् मनुष्यो! क्या तुम्हारे पास धन इसलिए है कि तुम उससे पशुता-पशुओं से भी बदतर स्थिति लाओगे?

में स्त्रीत्व और पुरुषत्व की भावना भी परिपक्व नहीं होने पाई है, आप लोगों के द्वारा दाम्पत्य की बोझीली गाड़ी में जोत दिए जाते हैं! खेद की बात तो यह है कि आप बालविवाह के दुष्परिणाम प्रत्यक्ष देखते हैं फिर भी नहीं चेतते। बालविवाह के फल स्वरूप सन्तति रोगी, शोकी, निर्बल और अल्पायुष्क होती है।

आज भारत में सर्वत्र इसी प्रकार की चंचलता नज़र आ रही है। विवाह के विषय में जितनी अधीरता पाई जाती है उतनी शायद ही किसी अन्य विषय में हो। नीतिज्ञ जनों का उपदेश है कि—

गृहीत इव केशेषु मृत्युना धर्ममाचरेत्।

अर्थात् मौत सिर पर नाच रही है, ऐसा सोचकर धर्म का आचरण करना चाहिए।

पर आपके यहाँ उल्टी गङ्गा बहती है। धर्माचरण के समय तो आप सोचते हैं—'बुढ़ापा किस काम आएगा? जब समय सांसारिक झंझट जब कम हो जाएँगे तो धर्म की आराधना हो जायगी। पर बच्चों के विवाह के विषय में ऐसा विचार करते हैं मानों आपने संसार की नश्वरता को भलीभाँति समझ लिया है और जीवन का कल तक भरोसा नहीं है। इस कारण 'काल करे सो आज कर, आज करे सो अब।' इस नीति का अवलम्बन करते हैं। और आप समझते हैं कि हम अपनी सन्तति के बड़े हितचिन्तक हैं। आपके ख़याल से आपकी सन्तान में इतनी योग्यता नहीं कि वह आवश्यकता समझने पर अपना विवाह आप कर लेगी। पर मित्रो! कभी आप यह भी विचार करते हैं कि जो सन्तान अपना विवाह करने योग्य भी न होगी, उसमें विवाहित जीवन को गुज़ारने और सहार करने की योग्यता कहाँ से होगी?

अगर आप अपने अन्तःकरण की समीक्षा करें तो मालूम होगा कि विवाह सम्बन्धी अधीरता में सन्तान के कल्याण की कामना कारण नहीं है मगर अपने आनन्द की अपरिहार्य अभिलाषा ही उस अधीरता का प्रधान कारण है। पुत्र और पुत्रियों से आपका जी भर गया है। अब आपके मनोरंजन के लिए नयी सामग्री के रूप में पोता और पोतियों की जरूरत है। बस, अपने मनोरंजन के हेतु आप अपनी सन्तान पर भी दया नहीं लाते! अपने स्वार्थ के लिए उनके साथ ऐसा निर्दय व्यवहार करते हैं कि उन्हें जीवन भर उसका कटुक फल भुगतना पड़ता है और फिर भी उसका अन्त नहीं आता।

मित्रो! इस दुर्भावना से बचो। विचार करो कि आपके थोड़े स्वार्थ से सन्तान का जीवन किस प्रकार नष्ट हो रहा है? अपनी हवस पूरी करने के लिए ऐसे बालकों का विवाह मत करो जिन्हें विवाह का उद्देश्य ही मालूम नहीं है।

सन्तान उत्पन्न करके तुमने अपने सिर पर जो भारी उत्तरदायित्व अंगीकार किया है, उसका निर्वाह उनका विवाह करने से नहीं होता। ऐसा करके आप अपने उत्तरदायित्व को अधिक बढ़ाते हैं। अगर आप सन्तान के उत्तरदायित्व को निभाना चाहते हैं—अगर आप सन्तति-ऋण से मुक्त होना चाहते हैं तो उन्हें सुशिक्षित बनाइए, सदाचारी बनाइए, जीवनोपयोगी अनेक विद्याओं का [illegible] दीजिए। जो माता-पिता सन्तान को [illegible] हैं पर उस [illegible] जीवन का [illegible] लापरवाही करते हैं वह [illegible] हैं और सन्तान के प्रति [illegible] करते हैं।

[illegible]

में रखने का प्रयत्न करें, वासना के दलदल से बचाते रहें और उसके चित्त में किसी तरह का विकार न आने देने के लिए स्वयं भी संयम और सदाचार का जीवन बितावें। पर आज क्या हो रहा है? 'नान्या, थारे बींदणी लावां ? तू बींदणी ने कांई करेलो ? काली लावाँ के गोरी लावां ?' अफसोस ! इस प्रकार की बातें करके अपना मनोरंजन करने वाले अज्ञान माता-पिता के लिए क्या कहा जाय ? इससे बढ़ कर पतन का और क्या मार्ग हो सकता है ? इस प्रकार की बातों से बालक के कोमल और कल्पनाशील मस्तिष्क पर जो जहरीला प्रभाव पड़ता है उससे बालक का सर्वमुखी पतन होता है। आगे जाकर यह कुसंस्कार उन्हें पतन के गड्ढे में डालते हैं। बालक जब पतन की तरफ जाने लगता है तो माता-पिता को कुछ होश आता है और वे पश्चात्ताप करते हैं। मगर उस समय का पश्चात्ताप किस मतलब का ? धक्का देकर कुएँ में अपने बालक को पटक कर रोने वाले की जो दशा हो सकती है वही ऐसे माता-पिता की होती है।

मित्रो ! आप इस तथ्य पर शान्ति के साथ विचार करें। आप की थोड़ी-सी भी भूल बालक के जीवन को अन्धकारपूर्ण बना सकती है। आप ऐसा कोई काम न करें जिससे आपकी सन्तान का अहित हो। सन्तान का जीवन आपके हाथ में है। कम से कम आप उसकी इतनी चिन्ता अवश्य करें जितनी बागवान किसी बगीचे के पौधों की करता है। [illegible] का ख्याल [illegible]। [illegible] के लिए सन्तान के उज्ज्वल भविष्य पर ध्यान रखना मत भूलिए। उन्हें शक्तिशाली, सदाचारी, संयमी और [illegible] बनाने की चेष्टा कीजिए। बालविवाह की कुप्रथा का अन्त कीजिए।

दूसरों की आँखें खोल दीं। पर जो लोग जानकर आँखें बन्द किए हैं, उनका क्या इलाज हो सकता है? अगर वह वृद्ध विवाह करने का दुस्साहस न करता तो उस लड़की का पतन शायद ही होता।

भारत में पहले स्वयंवर की रीति प्रचलित थी। कन्या अपनी इच्छा के अनुसार वर का चुनाव कर सकती थी। माता-पिता उसमें विशेष हस्तक्षेप नहीं करते थे। वे जानते थे—एक जीवन को दूसरे जीवन के साथ मिला देना कठिन काम है। अगर 'योग्यं योग्येन योजयेत्' के अनुसार उचित सम्बन्ध न हुआ तो परिणाम अत्यन्त अवाञ्छनीय होता है।

बाद में यह काम माता-पिता ने अपने हाथ में लिया। उस समय यह परिवर्त्तन सकारण रहा होगा पर आज तो इस परिवर्त्तन ने कुछ और ही रंग दिखाया है। अनेक बार तो ऐसा होता है कि ब्याह भी व्यापार बन जाता है।

आपको! आपको यह बताने की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए की कन्या विक्रय और वर विक्रय धात्रधर्म के विरुद्ध हैं। इसमें धर्म, नीति और समाज की मर्यादा का खंडन होता ही है, साथ ही बेचे जाने वर और कन्या का जीवन भी सदा के लिए दुःखमय बन जाता है। अतएव इस कुप्रथा का अन्त करो इसी में कल्याण है।

मृत्युभोज

मृत्युभोज मारवाड़ प्रान्त में 'मोसर' कहलाता है। 'मोसर' का भोजन महापापकारी भोजन है। वह गरीबों को अधिक गरीब बनाने वाला और धनवानों को दयाहीन बनाने वाला है।

आप मौत के उपलक्ष्य में किये जाने वाले भोज को खाने के लिए जिनके घर उत्साह के साथ जाते हैं, क्या कभी उनके घर की भीतरी हालत भी आपने पूछी है? क्या जातीय समवेदना की इतिश्री उनके घर भोजन कर आने में ही हो जाती है?

[illegible]

सच्चा जाति-हितैषी वह है जो अपने व्यवहार से गरीबों की प्रतिष्ठा बढ़ाता है, जो अपने गरीब जाति-भाइयों की सहूलियत देखकर स्वयं बर्ताव करता है, जो उनकी प्रतिष्ठा में ही अपनी प्रतिष्ठा मानता है। सच्चा जाति हितैषी अपने बड़प्पन की रक्षा गरीबों के बड़प्पन की रक्षा करने में ही मानता है।

मित्रो ! जरा विचार करो—क्या एक-दो दिन तक भोज में जीमने से आप मोटे ताजे हो जाएँगे ? अगर ऐसा नहीं है तो 'मोसर' में खर्च होने वाला धन किसी धर्म-कार्य में, जाति-भाइयों की भलाई में, खर्च करना क्या उचित नहीं है ? आपके अनेक जाति-भाई वृथा भटकते फिरते हैं। उन्हें कहीं से कोई सहायता नहीं मिलती। अगर उनकी सहायता में आप कुछ व्यय करें तो क्या आपका धन व्यर्थ चला जायगा ? यदि 'मोसर' करने से लाभ होता है तो क्या इससे लाभ न होगा ?

कई भाई कहते हैं—जवान आदमी की मृत्यु होने पर मोसर नहीं जीमना चाहिए। बूढ़ा का जीमने में कोई हानि नहीं है। इसका मतलब यह समझना चाहिए कि जवान नहीं मरने चाहिए, बूढ़े मरें तो अच्छा है ? लड्डू खाने के लिए कैसे कैसे रास्ते निकाले जाते हैं ! 'मोसर' [illegible] बूढ़े मरें और कब माल [illegible]

[illegible]